॥ श्री ॥

व्याख्यान संग्रह सारमालाका द्वितियपुष्प

श्री सकडालपूत्र श्रावक की कथा

श्रीमज्जैनाचार्य्य पूज्य महाराज श्री १००८ श्री
जवाहिरलालजी महाराज

के

व्याख्यानों के आधार पर

श्री साधूमार्गी जैनपूज्य श्रीहुक्मीचन्दजी महा-
राज की सम्प्रदायके हितेच्छु श्रावक मण्डल
ऑफिस रतलाम

ने

प० मुन्नालालजी वैद्य शास्त्री सोजत निवासी
द्वारा सम्पादन कराके

श्री जैन प्रभाकर प्रिन्टिंग प्रेस रतलाम में
छपवाकर प्रकाशित की

प्रथमावृति १०००　वीर स०२४५५ विक्रम १९८५　मूल्य ।=)



॥ श्री ॥



वक्तव्य

सजीवति गुणायस्य यस्यधर्मः सजीवति ।'
गुण धर्म विहिनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम् ॥ १ ॥

यह सब कोई निर्विवाद स्वीकार करलेंगे कि जीवना उन्हीका सार्थक है जो विद्यमान् न होते हुवे जिनको दुनिया अपना आदर्श बनावे अर्थात जिनकी चरीया को अपने उत्थान में आलंबन भूत बनावे किन्तु जिनकी चरीया की नींव श्रीमद्गणधर भगवान् श्री सुधर्मास्वामि जगत जीवों के कल्याणार्थ द्वादशांगी में लेवे उनका ही जीवन परम जीवन है और नीतिकार भी कहते हैं कि " सजीवती " अर्थात वे विद्यमान न होते हुवे भी जीवित हैं

आत्म कल्याण के लिये मुख्य आवश्यक्ता भेद विज्ञान की है कि जिसके द्वारा आत्मा अपने निज स्वरूप को पहिचान उसे प्राप्त करने की चेष्टा करे किन्तु ऐसे अध्यात्मिक ज्ञान द्वारा ध्येय का प्राप्त कर लेना हरेक आत्मा के लिये सरल नहीं हैं अतः जो आत्माए इस लायक नहीं हैं बहुत पश्चात हैं उनको योग्य बनाने के लिये वैसे आदर्श पुरुषों ने ग्रहण किया हुवा मार्ग और उन्होंने जो साफल्यता प्राप्त की है वैसे दृष्टांत रखकर उसके द्वारा उनको सशक्त बनाना यह मार्ग दर्शक महात्माओं का मुख्य धर्म है इस कुदरती नियम को जैन धर्म के प्रचारकों ने भी अपना या है

और हमारे जैसे अल्प मतीयों के लिये सूत्रों में जगह २ आदर्श पुरुषों के चरित्रों को स्थान दिया है उनको प्रायः सभी मुनि महाराज व महासतीयाजी वाचते व हम लोगों को सुनाते हैं किन्तु व्याख्यान वाचकर उस इतिहास द्वारा हमें क्या लाभ उठाना चाहिये क्या २ शिक्षाए ग्रहण करना चाहिये वह समझा देना सभी मुनिराज व सतिया नहीं करसके ।

वर्तमान् समय में श्रीमद् जैनाचार्य्य श्री श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज साहब की उपदेश पद्धति अधिक रोचक प्रतिभाशाली तथा सारगर्भित होने से उन व्याख्यानों का संग्रह कराना आवश्यक जानकर मंडल के तरफ से व्याख्यान लिखने का कार्य्य गत तीन चातुर्मास से शुरू है जिस में से पृथक् करण करके "श्रावक का अहिंसाव्रत" नामक प्रथम पुष्प तो गत वर्ष आपके कर कमलों में ऑफिस ने पहुचाया है इसी तरह हिंसा अहिंसा के भेदको समझकर सच्ची अहिंसा का पालन किन २ गृहस्थोंने किस २ प्रकार किया है ऐसे श्रीमद् महावीर प्रभुके उपासकों में से "श्री सकडालपुत्र श्रावककी कथा" नामक यह द्वितीय पुष्प वाचक के कर कमलों में पहुचाते हुवे ऑफिस के कार्य्य कर्ताओं को अत्यानन्द होता है ।

इस कथा में अपने धर्म की दृढ़ श्रद्धा रखते हुवे सत्संगति की रुची, सत्यका संशोधन, ग्रहण किये हुवे सत्यपर आरूढ होना, पाखंड और प्रपंच से बचना, सत्य सिद्धान्त द्वारा प्रपंचीयों को निरुत्तर करना इत्यादि विषयों का दिग्दर्शन आज के कमजोर जैनीयों के लिये जिस खूबी से कराया गया है वे वास्तव में मनन करने योग्य हैं, हम अन्तः करण से चाहते हैं कि जनता इस व्याख्यानसार संग्रह के पुष्पों को अपनाकर अपने जीवन को आदर्श जीवन बनावें ।

यहतो निर्विवाद सिद्ध है कि पुस्तकें जनता को वस्तु स्थिति का सच्चा भान करानेवाली हैं और प्रत्येक गृहस्थ को अपने जीवन का आदर्श उच्च बनाने में सहायक होने से प्रति घर में एक २ पुस्तक रहने लायक है.

विज्ञप्ति

पुस्तक को सुन्दर व रोचक तथा शुद्ध बनाने का प्रयत्न बन सका उतना विशेष किया गया तथा प्रुफ के सोधन का कार्य्य भी विशेष सावधानी से किया गया है तथापि द्रष्टी दोषसे अशुद्धियें रही हों अथवा भूल हुई होतो कृपया सूचित करें ताकि आगामि आवृति में सुधार किया जाय.

स्पष्टीकरण

साधु महात्माओं की भाषा परिमित होती है, इसीलिये वे खूब सोच समझ कर शास्त्र को दृष्टी में रखकर ही उपदेश फरमाते हैं। पर संग्राहक, अनुवादक, संशोधक व सम्पादक महाशयों से भाव उलट होगये हों अथवा साधुकी भाषा मे विपरीत वचन लिखे गये हों तो यह जुम्मेवारी पूज्य श्री के ऊपर नहीं है. किन्तु यह दोष कार्य कर्ताओं का समझें। जो २ विषय शास्त्र की दृष्टी से विरुद्ध मालूम दे उसका खुलासा पूज्य श्री से अथवा ऑफिस के साथ लिखा पढ़ी करने से हो सकेगा। इत्यलम्

भवदीय—

घालचंद श्री श्रीमाल — सेक्रेटरी

वरधमाण पीतलिया — प्रेसिडेण्ट

श्री श्वे० साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मंडल ऑफिस, रतलाम (मालवा)

लद्धट्ठे , गहियट्ठे , पुच्छियट्ठे , विणिच्छियट्ठे , अभिगयट्ठे अट्ठिमिंज पेमाणुराग रत्ते ।

लद्धट्ठे अर्थात् उसे अपने धर्म का वास्तविक अर्थ मालूम हो गया था।

जिस मनुष्य को अर्थ मालूम हो गया पर हृदय में धारण न कर सका तो उसका सुनना किस काम का ? एक भाई कानों में मोती पहने हुए है , यदि वह सोने के तार में उन्हे न पिरोये होते तो ये टिके रह सकते थे ?

'नहीं।'

इसी प्रकार जो शास्त्रों के अर्थ को 'गहि अट्ठा' हृदय के प्रेम रूपी सूत्र में नहीं पिरोता उसका शास्त्र श्रवण करना न करना बराबर है।

सकडाल ने गोशालक के धर्म को हृदय में स्थान दिया था। जैसा गोशालक ने कहा , वैसा ही धारण कर लिया , यह बात नहीं थी पर 'पुच्छि यट्ठा' अर्थात् पूँछता भी था । याने जिस जिस विषय में उसे जो कुछ शका होती थी पूँछ पूँछ कर उसका निवारण कर लेता था।

प्यारे भाईयों ! आप लोगों को भी यह बात ध्यान में रखने की है कि जिस विषय में शका हो 'पूँछ कर , उसका समधान कर लेना चाहिये।

यह बात किसी खास धर्म वालों के लिये ही नहीं, तमाम मजहब वालों को इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये।

कई भाइयों को क्रिया करते देख दूसरे लोग उनसे उस क्रिया

सत्य धर्म का नियम होता है कि वह सब प्रकार के मनुष्यों को अपने में स्थान देता है। किसी को वञ्चित नहीं रखता। अपने मनमें ही कोई वञ्चित रहे, यह बात दूसरी है।

गोशालक ने भी अपने शासन (धर्म) के विस्तार के लिये इस नियम को अपनाया। जिस प्रकार वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को स्थान देता था वैसे ही वह शुद्र को भी देता था।

जो धर्म चारों वर्णों को समानता का स्थान नहीं देता वह कभी नहीं फलता फूलता पर जिस धर्म में चाहे वह पाखंड रूप से ही क्यों न खडा किया गया हो, चारों वर्णों को स्थान देता है, वह जरूर चल निकलता है। हां यह बात जरूर है कि वह पाखंडी शासन सत्य धर्म की तरह संसार का कल्याण नहीं कर सकता पर दुनिया में अतीत की स्मृति जरुर छोड जाता है।

गोशालक का शासन इसी प्रकार का था। उसने पाखंड द्वारा अपने मत का प्रचार अच्छा कर लिया पर आज दुनियां में उसका सिर्फ नाम ही शेष है।

मित्रों! जिस प्रकार महावीर प्रभु के अनुयायी श्रमणोपासक कहे जाते हैं उसी प्रकार गोशालक के अनुयायी आजीविक कहलाते थे ये आजीविक उपासक गोशालक को ही अपना तीर्थंकर मानते और उसी के प्रति श्रद्धा भक्ति रखते थे।

सकडाल गोशालक के मुख्य अनुयायिओं में से एक था। इसने गोशालक के धर्म का खूब अच्छी तरह मनन किया और उस पर पूरी आस्ता रखता था। इसका वर्णन गणधरों ने इन शब्दो में कीया है-

लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अभिगयट्ठे अट्ठिमिंज पेमाणुराग रत्ते।

लद्धट्ठे अर्थात् उसे अपने धर्म का वास्तविक अर्थ मालूम हो गया था।

जिस मनुष्य को अर्थ मालूम हो गया पर हृदय में धारण न कर सका तो उसका सुनना किस काम का? एक भाई कानों में मोती पहने हुए हैं, यदि वह सोने के तार में उन्हें न पिरोये होते तो ये टिके रह सकते थे?

'नहीं।'

इसी प्रकार जो शास्त्रों के अर्थ को 'गहि अट्ठा' हृदय के प्रेम रूपी सूत्र में नहीं पिरोता उसका शास्त्र श्रवण करना न करना बराबर है।

सकडाल ने गोशालक के धर्म को हृदय में स्थान दिया था। जैसा गोशालक ने कहा, वैसा ही धारण कर लिया, यह बात नहीं थी पर 'पुच्छि यट्ठा' अर्थात् पूँछता भी था। याने जिस जिस विषय में उसे जो कुछ शंका होती थी पूँछ पूँछ कर उसका निवारण कर लेता था।

प्यारे भाईयों! आप लोगों को भी यह बात ध्यान में रखने की है कि जिस विषय में शंका हो 'पूँछ कर, उसका समधान कर लेना चाहिये।

यह बात किसी खास धर्म वालों के लिये ही नहीं, तमाम मजहब वालों को इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये।

कई भाइयों को क्रिया करते देख दूसरे लोग उनसे उस क्रिया

का वास्तविक अर्थ पूछने की जिज्ञासा करते हैं पर 'मैं तो यूं ही करा हो ; इस उत्तर के सिवाय वे समाधान कारक कोई जवाब नहीं दे सकते। इसका खास कारण हमको तो यही मालूम होता है कि वे भाई शास्त्र श्रवण ध्यान पूर्वक नहीं करते। शास्त्र श्रवण यदि ध्यान पूर्वक किया जाय तो कभी कोई न कोई शंका उपस्थित हो जाना संभव है। शास्त्र श्रवण अच्छी तरह किया ही नहीं तो फिर शंका किस प्रकार उपस्थित हो सकती है ? एक आदमी पढ़ा लिखा कुछ नहीं, उसके हाथ में कोई पुस्तक देकर पूंछे कि तुम्हें इसमें कोई शंका है ? वह कहेगा—'नहीं।'

ठीक है, वह इसके सिवाय दूसरा उत्तर ही क्या दे। दूसरे प्रकार का उत्तर तो वह देसकता है जो उसके पढ़ने की योग्यता रखता है।

भाईयों ! आप श्रावक कहलाते हैं। अतएव जिस प्रकार ३०–३२ वर्ष का जवान पट्ठा तरुणि स्त्रियों के मधुर संगीत से मस्त होकर पुलकित हो उठता है, अपनी सुधबुध भूल जाता है, उसी प्रकार शास्त्र श्रवण करने में आपको भी तल्लीन होजाना चाहिये। पर देखते हैं, आज कल के बहुत से श्रावकों में यह गुण नहीं–दिखलाई देता। कइयों का आसन बराबर नहीं टिकता, कई बातें करने लग जाते हैं और कुछ भाईयों का ध्यान किसी और तरफ ही बटा होता है। इसलिये लाचार होकर उन भाईयों को कईबार एकाग्रता करने के लिये भी कहना पड़ता है।

श्रवण करना गर्भाधान जैसी क्रिया है। शुद्ध वीर्य से शुद्ध गर्भ रहता है और फल भी अच्छा निकलता है। जो मनुष्य भले प्रकार शुद्ध वक्ता से शुद्ध श्रवण करता है उसका नतीजा बहुत

अच्छा निकलता है पर जो शुद्ध श्रवण नहीं करता उसका फल बुरा ही होता है।

श्रोता को पहले निश्चय कर लेना चाहिये कि अमुक का उपदेश श्रवण करने लायक है या नहीं। यदि है तो इन्द्रियों की बिखरी हुई शक्तियों का और चचल मन का एकीकरण करके सुनना चाहिये। जो श्रोता देह भान भूल वक्ता की ही तरफ आखें गाड़ कर एकाग्रता से श्रवण करता, उसको निश्चय लाभ मिलता है।

उपदेश श्रवण करने का यह तरीका होता है कि पहले खूब ध्यान से श्रवण करना चाहिये बाद में मनन करना चाहिये। यदि कोई प्रश्न जैसी बात मालूम हो तो उसका समाधान वक्ता से ही कर लेना अच्छा होता है।

उस सकडाल ने भी ऐसा ही किया था। उसे जो शकाए होती अपने गुरु गोशालक से पूछ लिया करता था।

भाइयों, वह कुम्हार गोशालक का शिष्य था और आप महावीर के। आप दोनों में से किसको अच्छा मानते है ?

'महावीर के शिष्यको।

गोशालक के शिष्य ने अपने प्रभु के वचन को श्रवण कर उसके आदर्श को रग रग में रमा लिया, क्या आप में ऐसी श्रद्धा है? यदि है तो फिर भैरू भोपा सीतला ओरी पीर कबरस्तान आदि को क्यों पूजते हो? याद रखिये, यह खोटी श्रद्धा आप का पतन करने वाली है।

आपने अपने अज्ञानसे सीतला, जो एक प्रकार की बिमारी है, उसको भी देवी मानली, बडा आश्चर्य है।

मेरी बहुतसी बहनें ' वालूडा रखवाली, कह कर सीतला के गीत गाती है पर फिर भी उनके बचों की रक्षा नहीं होती, पर अंग्रेजों ने इसे गोद डाला (टीका लगा डाला) तो भी उन के बच्चे तन्दुरस्त मोटे ताजे दिखलाई देते है। इसका क्या कारण ? उनका ज्ञान और आप लोगों का अज्ञान।

अंग्रेज लोग जबरदस्ती टीका लगा कर इसको नष्ट करना चाहते है पर आप लोग अभी पूजते ही हैं । मैं टीका लगवाने का पक्षपाती नहीं हु । मैं इसे घृणित उपाय समझता हु। कारण टीके के अन्दर जो दवाई लगाई जाती है, वह गौ की आँत में से निकाली जातीहै। ऐसी अपवित्र चीज आपके और आपके बच्चों के शरीर में प्रवेश करके आप लोगों का रक्त बिगाडा जाता है । बहुत से विद्वान चिकित्सकों का कहना है कि इनसे [टीकेंसे] कुछ लाभ भी नहीं होता। अतएव इसका प्रतिकार करना आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि सीतला को माता कहने की भावना अपने हृदय में से निकाल डालिये और अपनी श्रद्धा पर कायम बने रहिये।

आप लोग अर्हत भक्त हैं। । एक के भक्त बन कर दूसरी श्रद्धा नहीं रखनी चाहिये। जो मनुष्य एक पर श्रद्धा नहीं रखता उसका जीवन डावा डोल हो जाता है और उसकी दशा ' धोबी का कुत्ता घर का न घाट का, सी हो जातीहै।

आज भारत वर्ष के लोगों की, और जिसमेभी ज्यादातर जैन समाज की भावना बहुत दुर्बल हो गई है। अर्हत के भक्त को यह बात शोभा नहीं देती। अर्हत का सच्चा भक्त, ताड़ जैसे लंबे भयानक पिशाच के हाथ में चमकती हुई तलवार को देख कर भी

नहीं डरता, उसका एक रोम भी नहीं कांपता। क्या ११४१ आदमियों को मारने वाले अर्जुन माली से सुदर्शन कांपा था ?

' नहीं ।

पर आप तो रासम के नाम से ही डरते है। बहुत से साधु, चौपाइयें दोहे बिगड़े साहित्य के छंद गाय गाय कर भूतों पिशाचों डाकनियों शाकनियों के मूर्ति मान चित्र खड़े कर देतेहै। जब साधु साध्वियां में भी ऐसे ऐसे वहम घुसे हुए है तब श्रावकों में दृढता कैसे आ सकती है ? सच्चा साधू वही है जो दुर्बलता को निकाल कर जनता में दृढता का भाव भरदें।

मित्रों ! सत्य की स्थापना के लिये प्रश्न समाधान करना जरूरी है पर किसी को कुछ क्लेश न हो इसका ध्यान रखना चाहिये।

सकडाल अपने गुरु से प्रश्न पूछ पूछ कर आजीविक धर्मका पक्का अनुयायी बन गया। उसकी उसमें पूरी श्रद्धा बैठ गई।

प्यारे मित्रों ! श्रद्धा दो तरह की होती है । एक जीती हुई और दूसरी मुर्दार। सकडाल मे उसके धर्मकी जीती हुई श्रद्धा थी। क्या आप सब में भी जीती हुई श्रद्धा है। मुझे तो वहुधा मालूम नहीं देती। अभीतक आप में बहुत से भाइयों की श्रद्धा जितनी कलदारों पर है उतनी तो क्या पर उससे आधी भी धर्म पर नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि कलदार वाले धर्म पर श्रद्धा नहीं रख सकते। रखते हैं, यदि नहीं रखते तो यह सकडाल कुम्हार कैसे रखता ? इसके पास कलदारों की कमी नहीं थी। शास्त्र बतलाता है कि उसके पास ३ करोड़ सुनैये (आज के हिसाब से करीब ६० करोड़ रुपैये) की ऋद्धि थी।

आपको आश्चर्य होगा कि—' कुम्हार के पास इतनी ऋद्धि, पर, मित्रों ! इस में आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। याद रखिये जो देश ऋद्धिशाली होता है उसके तमाम वर्ण वाले बडे २ धनाढ्य होते हैं। अमेरिका आज ससार में सब से बडा ऋद्धिशाली देश गिना जाता है। वहा के एक बांस बेचने वाले के पास बहुत सा धन बतलाया जाता है। सुनते है कि उसने अपनी कन्या के दहेज में कितने ही करोड का धन दिया था। कहलाता तो यह बांस का व्यापारी, पर धन इस के पास कितना है ! जब आज भी ऐसे २ उदाहरण मिलते हैं तब उन दिनों भारत के—उस भारत के जो संसार का सिर मौर समझा जाता था, जिसको सारे देश अपना गुरु मानते थे, कुम्हार के पास इतना धन होतो कौनसी बड़ी बात है ?

आज भारत बहुत कंगाल देश होगयाहै। इसका कारण यह है कि यहां का अधिकांश व्यापारी वर्ग कच्चा माल विदेश भेजता है और पक्का माल यहां मगवाता है। क्या ऐसे व्यापारी, देशके हितैषी गिने जा सकते हैं ? कभी नहीं। यह बात कइयों को भले ही बुरी लगे पर सत्य कहे बिना नहीं रहा जाता। जिस देश में वह रहता है, जिसको वह अपनी मातृ भूमि कहता है, अपने स्वार्थ के लिये उसी देशका अहित करना कभी हित कर नहीं गिना जाता।

मित्रों ! यदि आज की तरह पहले का व्यापारी वर्ग अपने ही स्वार्थ का व्यवसाय करता तो क्या कभी भारत उन्नत दशापर होता ? ।

' नहीं '।

शास्त्र के अन्दर, अरणक श्रावक का एक उदाहरण मिलता है कि वह भारत का पक्का माल विदेश भेजता था। जिन दिनों

भारत का पक्का माल बाहर जाता था उन्ही दिनों का जिक्र है कि यहां के सकडाल नामक कुम्हार के पास ३ करोड सुनैये थे।

गणधरों ने इस कुम्हार की ऋद्धि की नोंध लेकर हमारी आखें खोल दी है।

कई भाई कहते हैं 'महाराज तो समार की बातें बांचते है। पर मित्रों! यह कथन जो गणधरों ने सूत्रों में फरमाया है उसका स्पष्टिकरण पूर्वक कथन करके समझाने का नाम ही व्याख्यान है यदि गार्हस्थ्य कार्यों के विचार को समझाने में साधू को दोष लगता हो तो भी गणधर भगवान् सूत्रों में ऐसा कथन क्यों करते? पर गणधर भगवान ने अगाध विचार से ग्रहस्थों के कृत्य कर्म की शास्त्रों में नोंध ली है और उसका हेतु भी अवश्य है आज उन गणधरों के वाक्यों का रहस्य पूर्ण विचार ग्रहस्थों को न समझाने से कृत्याकृत्य का भान बहुधा नष्ट भ्रष्ट हो गया है इस से अल्प पाप और न्याय नीति के बदले महा पाप और अन्याय को कई भाई श्रेष्ठ मान बैठे हैं

मित्रों! शास्त्र में लिखा है कि उस जमाने में जिसके पास जितने करोड सुनैये का व्यापार होता था वह अपने पास उतने उतने गौओं के गोकुल[१] रखता था। जिन दिनों भारत के अन्दर गौओं का ऐसा मान होता था उन दिनों यह वैभवशाली बना था इसमें कौनसी बडी बात है। गौ ऋद्धि सिद्धि की देन वाली मानी गई है। जहा ऋद्धि सिद्धि की देन वाली हो वहा वैभव की क्या कमी?

१-दस हजार गौओं का एक गोकुल होता था।

भाइयों! अपने शास्त्रों में गौ को बहुत ऊंचा आसन दिया है, इतना ही नहीं वेदों और पुराणों में भी इसे बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। ब्राह्मण लोग गायत्री मन्त्र का जाप 'गौ मुखी, के अन्दर हाथ डाल कर करते हैं पर इसका मर्म समझने वाले कितने होंगे?

गौ ऋद्धि सिद्धि की देनेवाली है इसी लिये वैदिक ऋषि ने भी ऋग्वेद के अन्दर ईश्वर से प्रार्थना की है कि—

गौ में माता वृषभः पिता में,
दिवः शर्म्म जगती मे प्रतिष्ठा।

अर्थात् जिन सात्विक भोज्यान्नों और गव्य पदार्थों की सहायता से मैं संसार सुख भोग कर अपने को कल्याण का अधिकारी बना सकता हूं, वे गौ और बैल की सहायता ही से मिल सकते हैं। अतः गौ मेरी माता और बैल मेरा पिता है। उन्हीं से मेरी प्रतिष्ठा हो अर्थात् मुझे बलवान और मेधावी बनाने के लिये वे मुझे प्रचुर सख्या में मिलते रहें।

और देखिये, क्या श्री कृष्ण कोई भोले मनुष्य थे ?

'नहीं।,

उन्होंने गौएं चराई थी या नहीं?

'चराई।

मित्रों इसका मर्म कौन समझेगा? एक कवि ने तो यहां तक कहा है कि गौ वंश की रक्षा के लिये ही कृष्ण ने अवतार धारण किया था।

हाथ में लकड़ी लेकर गौओं के साथ कृष्ण का जगल में जाना, इसमें कितना गहरा तत्व भरा हुआ है। आज गौओं की रक्षा के लिये पिंजरा पोलें खोली जाती हैं पर चन्दे उघा २ कर

कहां तक काम चलेगा। गौ रक्षा का तत्व तो कृष्ण ने बतलाया वही ऊंची जड़ वाला और ठोस उपाय कई विद्वान मानते है। आज आप में अज्ञान का राज्य है इसी लिये ऋद्धि सिद्धि की देनेवाली भी आपको बोझ रूप मालूम दे रही है।

कई लोग तर्क करते हैं कि किसी जमाने में गौ ऋद्धि सिद्धि देनेवाली रही होगी पर आजके महगी के जमानेमेंतो शायदही हो

इसका उतर गौ रक्षा के रहस्य के जानन वाले बन्धु देते हैं और कहते हैं कि जो भाई गौ पालन की इच्छा रखते है वे यदि शान्ति के साथ गौ का आमद खर्च का हिसाब भलि भाति लगाले तो उन्हे मालूम हो जायगा कि आज के जमाने में भी गौ ऋद्धि सिद्धि की दात्री है या नहीं। वे हिसाब बतलाते हुए कहते हैं आज एक अच्छी गाय १००) रुपैये में आती है। आप इन सौ रु० को गाय के खाते में लिख लीजिये। गाय प्रायः करके १० महिने तक दूध दिया करती है, इस समय तक ज्यादा से ज्यादा खर्चा २००) रु. गाय के नाम और लिखलिजिये। कुल ३०० रु. गौ के खाते में गये। यह तो हुआ खर्च का हिसाब। अब आमदनी का हिसाब लगाईये। दुधारू, गाय, जिसको आपने सौ रु. में ली है, अन्दाजन साम सुबह मिलाकर ८ सेर दूध देन वाली होगी। अच्छा दूध बाजार में ४ सेर का मिलता है इस हिसाब से १० महिनों में गौ से आप को कितनी आमदनी हुई, जोडिये।

'६०० रु. हुए।

खर्च तो हुए ३०० और आमदनी हुई ६०० की बतलाईये, ऐसा व्यापार कोई दूसरा है, जिसमें एक के दो होते हों?

यहा कीसी को यह शंका हो सकती है कि आमदनी का

हिसाब तो आजके गौ रक्षक बतला ते हैं पर यह बात तभी तक की हुई जब तक गाय दूध देती रहे। बाद में हानि हो सकती है?

इसका उत्तर वे 'नहीं' में देते हैं और कहते हैं—'जो गौ सौ रुपये में खरीदी गई थी वह गौ दूसरे साल पालक के पास मुफ्त में रही और उसके साथ उसका बछडा भी मुफ्त में। गर्भा वस्था में करीब १० महिने गौ दूध नहीं देती. अत एव इस समय इसकी खुराक भी कम होती है-केवल अंदाजन १००) रुपे के बदले में पालक को बछडा सहित गौ १२५) रु. का माल मिला। इसके अलावा कंडे तथा गौ मूत्र के कुदरती लाभ अलग। इस तरह हिसाब लगाने पर बिना दूध देने वाली गौ भी खरच के बदले ज्यादा लाभ दाता ही है हानि कारक नहीं।

सभव है इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति हो पर यहतो कहा जा सकता है कि गौ थोडा खर्च लेकर ज्यादा लाभ देने वाली होती है।

आज कल के कई लोग थोडी हैसियत होते हुएभी अपने को ज्यादा हैसियत वाला प्रमाणित करने के लिये बाह्याडबर बहुत बढा लेते हैं। यद्यपि ये बिना जडवाली इज्जत की इमारत खडी कर महल के रहन वाले कहला जाते है पर किसी समय समय का झोंक ऐसा आता है कि इनका सारा दिखावटी सुख नष्ट हो जाता है। और ये टूकडे टुकडे के लिये हाथ फैलाने वाले बन जाते हैं।

सकडाल की नीति ऐसी नहीं थी; पर वट वृक्ष की भांति थी।

वनस्पति विज्ञान के विशेषज्ञों का कहना है कि वट वृक्ष हिन्दुस्थान के सिवाय और किसी देश में नहीं होता। बहुत से

हिन्दू लोग उसे विष्णु का शयन स्थान मान कर पूजते हैं परन्तु इस अलङ्कार के रहस्य प्रायः नहीं जानते और विष्णु को वट वृक्ष शायी कहते हैं। इस वृक्ष का ऐसा मान क्यों किया गया, यह क्या शिक्षा देता है, लोग उसे भूल गये। यदि वट वृक्ष की शिक्षा भारतवासी किसे ग्रहण करलें तो उनका सारा नैतिक जीवन सुधार सकता है।

वट वृक्ष में यह खूबी है कि वह अपनी जड़ जमीन में जितनी गहरी जमायेगा उतना ही ऊपर उठेगा। जड़ यदि एक गज गहरी जायगी तो जमीन के ऊपर भी एक गज, जड़ दो गज जमीन में होगी तो ऊपर भी दो गज, और दश गज होगी तो ऊपर भी दश गज दिखाई देगा। कहने का मतलब यह है कि इसकी जड़ जितनी नीचे जायगी उतने ही गज यह ऊपर उठेगा। इसी कारण यह इतना मजबूत हो जाता है कि चाहे इसके ऊपर हाथी घूमा करें, कुछभी बिगाड़ नहीं हो सकता। अतः यह भारतवासियों को शिक्षा देता है कि 'जितनी शक्ति तुम्हारे अन्दर हो उतना ही बाहर फैलाव करो। यदि तुम इस प्रकार करोगे तो तुम्हें कभी दुःख का सामना न करना पड़ेगा। पर आज इस से उलटी दशा देखी जाती है। घर में चाहे कुछ मत हो पर हाथ में सोने की बगड़ियें तो चाहिये ही। बतलाइये यह वट वृक्ष जैसा काम कहां हुआ। यह तो एरंड वृक्ष के समान हुआ। जिसे एक गधेड़ा भी अपनी पीठ के बलसे उखाड़ सकता है। कहां तो वट वृक्ष और कहां एरंड। वट वृक्ष में एक बात और भी देखी गई है इसकी जटा जब निकलती है तब वह नीचे उतर जमीन में अपना घर कर लेती है। जटायें बढ़ बढ़ कर स्तम्भ रूप हो उस

वट वृक्ष की और गहरी जड़ जमा देतीहै। वट वृक्ष अपना फैलाव वे ढंग तौर से नहीं करता, सुहावने ढंग से करता है। प्रत्येक भारतवासी को इसकी गहरी शिक्षा का मनन करना चाहिये और इसकी शिक्षा अपने जीवन में उतारनी चाहिये। वट वृक्ष अपनी इसी चातुरी के बल हजारों मनुष्यों को अपने नीचे बिठलाने में समर्थ हो जाता है। मैंने ' विनोता ' के अन्दर ऐसा वट देखा था। वट वृक्ष की शिक्षा गृहस्थ को ही नहीं साधु को भी लेनी चाहिये। जो साधु ध्यान मौन अध्यवसाय नहीं करता सिर्फ उपरी आडंबर ही रखता है उसकी दशा भी एरंड के समान हो जाती है। पर जो वट वृक्ष के समान बनता है उसका प्रकाश संसार के ऊपर सहज ही पड़ जाता है।

सकडाल ने मानों वट वृक्ष का ही अनुकरण किया हो उस प्रकार अपने पास के तीन करोड़ सुनवैयों के तीन हिस्से कर एक हिस्सा जमीन में गाड़ दिया, एक व्यापार में और एक स्थावार जगम सम्पति में विभाजित कर दिया।

सकडाल के अग्नि मित्रा नाम की भार्या थी यह बड़ी रूपवती और बुद्धिमती थी। उसके चरण रज की बराबरी आज की सेठानियें कहलाने वाली बहुतसी बहनें भी नहीं कर सकती।

सकडाल गौएं तो पालता ही था, उसके द्वारा उसे बहुत खासी आमदनी हो जाती थी। पर यह अपना जातीय पेशा (कुम्हार का काम) भी करता था। बर्तनों की इसके ५०० दुकानें थीं। और वे शहर के बाहर थीं। कई भाई कह सकते हैं कि दुकानें शहर के बाहर क्यों रक्खी गई? इस का मतलब यह था कि पहले लोगों का ध्यान स्वास्थ्य की

तरफ भी रहा करता था। यदि ५०० दुकानें बर्तनो की करने वाला शहर ही में रहता तो उसे शहर के अन्दर ही वर्तन पकाने पड़ते। इससे सारे शहर में धूआ फैल जाता और लोगों के स्वास्थ्य को हानि पहुचती। इसी बुद्धिमता से अपनी दुकानें शहर के बाहर रक्खी गई हों।

'क्या यह कुम्हार इतनी दुकानों का अकेलाही प्रबंध करता था?

'नहीं।'

इसके पास कई नौकर थे। इन नौकरों को वेतन के रूप में अन्न और वस्त्र मिलते थे।

मित्रों! आज की नौकरी में और पहले की नौकरी मे जमीन आसमान का अंतर है। जब से रुपैये (सिक्के) देकर नौकरी कराने की प्रथा भारत में चली तभी से इसमें महा दुष्टता फैल गई है। रूपैये का चलन पहले इतना नहीं था अन्न वस्त्र लेकर अपनी ईमानदारी से काम करते थे पर जब से सिक्का चला तभी से लोगों की नियत बिगड़ गई। आमदनी होती है २०० की और खर्च होता है ५०० का। कहा से आवेंगे?

'बेइमानी से।'

आज कल का बिचारा नौकर बिमार पड़जायतो उसकी तन ख्वाह काटी जाती है पर पहले के लोग इतने निर्दयी नहीं थे। वे अन्न वस्त्र से लोगों की पूरी सहायता किया करते थे।

प्यारे मित्रों! यह कुम्हार भी ऐसे मनुष्यो में से था। आप (ओसवाल) इसे कुम्हार समझ कर सोचते हो कि–' इस का क्या, पाँच सो दुकाने चलाने के लिये इसे हजारों बर्तन बनवाने पड़ते होंगे और उनको पकाने के लिये मोटे प्रमाण में अग्नि का उपयोग भी करता ही होगा अतएव यह तो महा आरंभी था।

भाइयों। आप इसे महाआरंभी भले ही समझें पर जब, इसकी आंतरिक नीति कितनी ऊँची थी, जिसका विचार करेंगे तो मालूम हो जायगा की हम (श्रावक) बड़े या वह-कुम्हार।

उस कुम्हार के यहाँ कई प्रकार के बर्तन बनाये जाते थे। शास्त्र के अन्दर उनके नाम दिये गये हैं। उन बर्तनों को देखना तो दूर रहा, नाम तक भी न सुना होगा। बहुत पुराने टीका कार भी इन बर्तनों का खुलासा नाम न लिख सके इससे आपको मालूम हो जाना चाहिये कि शास्त्र कितने पुराने हैं। विक्रम संवत् ११ सौ के टीकाकार ने भी इन बर्तनों का देश प्रसिद्ध लिख कर छोड़ दिये।

मित्रों! यह कुम्हार मुझे अजब कुम्हार मालूम देता है। आपके बहुत से भाई इसे हांडी वाला समझ कर देंगे कि यह शूद्र है इसलिये नीच है। पर हांडी बनाने वाले को आप नीच कैसे कहते है यह मेरी समझ में नहीं आता। हांडी बना कर लोगों की सहायता पहुंचावे वह नीच, पर झूठ बोले, पाप करे, गरीब के गले पर छुरी फेरे वह ऊंच! हाय, आपकी इस ऊंच नीच की व्याख्या को मैं क्या कहूं? सोचिये, यदि हांडी घड़ने वाला नीच गिना जाता तो बर्तन घड़ने की विद्या भगवान ऋषभदेव जी ने सिखलाई, ऐसा जैन ग्रंथों का प्रमाण है तो क्या भगवान ऋषभदेव ने नीचता सिखलाई?

भाइयों! आप छोटे २ कार्य करने वालों को नीच मत समझो ये आपके सहायक हैं। इन सहायकों की अवहेलना कर आप अपने जीवन को सुन्दरता से व्यतीत नहीं कर सकेंगे। अवहेलना करने से आपके ये सहायक इच्छा न होते हुए भी अन्य विदेशी धर्म के

शरण में जाकर कई एक आपके घोर शत्रु बन बैठे हैं। जरा विचार कीजिये। जो आपकी बहन बेटियों की रक्षा करसकते थे, जो हिंदुओं के मंदिरों के लिये सर्वस्व समर्पण कर सकते थे, जो आपके पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हो सकते थे, जो गौ को माता कहने में गौरव मानते थे वेही आप लोगों के अत्याचारों से तंग आकर आपकी बहन बेटियें चुराने में, मंदिरों को ध्वंस करने में, गौ पर छूरी चलाने में, और आपके खून चूसने के लिये तैयार होगये हैं।

जिस सकडाल की बात आप सुन रहे हैं उसके जमाने में उदार सिद्धान्त के पुजारी बहुत थे। वे किसी को घृणित नहीं समझते थे। इसका प्रमाण आप हरिकेशी श्रमण महाराज के दृष्टान्त से ले सकते हैं।

सकडाल का जीवन, आज कल के लोगों की तरह बेढगा न था। आज कल के लोग दिन रात काम करते हैं फिर भी पूरा नहीं होता तो आत्म चिंतवन के लिये समय कहां से निकाले? यह सब समय की बे-परवाही, अनियमितता का कारण है। सकडाल का जीवन नियमित होने से वह आत्म चिंतवन किया करताथा और आत्म चिन्तवन के लिये उसने एक अशोक वाटिका बना रक्खी थी। आप लोगों में आज भी धनवान बहुत हैं किसी के यहां आत्म चिंतवन के लिये ऐसा कोई स्थान मुकर्रर किया हुआ है? आप लोग तो ऐश आराम करने वाले आपको आत्म चिंतवन की क्या जरूरत? आप लोग व्याख्या न सुनने आते हैं पर फिर भी आपको शांति कहां? बहुत सी बहनें बातें ही किया करती हैं। ये नतो स्वयं बखान (व्याख्यान)

सुनती और न दूसरों को सुनने देती। ऐसा नहीं चाहिये । आत्मा को शांत रक्खो। शांत रखने से अजब आनन्द प्राप्त होता है इसका उल्लेख गीता में भी आया है ।

अजब आनन्द प्राप्त करने के लिये ही सकडाल अशोक वाटिका में बैठकर आत्म चिंतवन किया करता था ।

जो मनुष्य आत्म चिंतवन में लीन हो जाता है उसके चर-णों में देवता आकर रहते है । आप लोगों को अभी इस बात पर विश्वास नहीं है इसीलिये रामदेवजी भैरूंजी औलिया पीर कबर स्तान पर जा जा कर धक्के खाते फिरते हो। यदि आपको अपने आप पर विश्वास हो तो देवता आपकी हाजरी में रह सकते हैं। आपको कहीं जाने की जरूरत ही न पड़ेगी ।

याद रखिये सामान्य मनुष्यों को देवता नहीं मिलते । जो डरपोक है, कायर है, सकुचित हृदय वालाहै, लोभी है, लालची है, विश्वास घाती है उससे देवता सदा दूर रहा करते हैं पर जो वीर है, वीशाल हृदय वाला है, उदार है, सब आत्माओं को अपनी आत्मा के तुल्य मानता है उसकी सेवा में देवता सदा हाजिर रहने के अभिलाषी हुआ करते हैं ।

सकडाल में भी इन गुणों में से कइएक गुण विद्यमान थे। एक दिन जब वह गोशालक के मतानुसार आत्म चिन्तवन में ली न था तब देवता आकाश में आकर खड़ा हुआ । साधारण मनुष्य भी इस बात को जानते हैं कि देवता प्रथ्वी को नहीं छुआ करते। यह देवता पांच वर्ण के सुन्दर वस्त्रों से सज्जित था उन पर अनेक प्रकार के द्विव्याभरण सुशोभित होरहे थे। कानों में कुडल, गले में रत्नो का दिव्यहार, तेजस्वी किरण मडल के अन्दर दिव्य

मुखमंडल, दशों दिशाओं को आलोकित करता था। पैरों में पहनी हुई रत्न जड़ित घुघर माल की मधुर झकार चारों तरफ झकारित हो रही थी।

मित्रों! आपने भी कभी देवता के दर्शन किये है?

'नहीं।'

आप लोगों को कुम्हार की ५०० दुकाने देख कर विचार आता होगा कि इसके यहां हमेसा कितनी मिट्टी खोदी जाती होगी अग्नि का आरम्भ कितना होता होगा हाय हाय यह महा पापी है!

भाइयों आपको उपर की दृष्टि से यह कुम्हार भले ही आरम्भी समारम्भी दिखे पर चारित्र का पता ऊपर से नहीं लगता। चारित्र का असली पता आंतरिक ज्ञान से करना चाहिये ऊपर की क्रिया को देखकर महा आरभी महापापी ठहरा देना बिल कुल मूर्खता है। यदि यह वास्तव में महापापी या महाआरम्भी होता तो देवता किस प्रकार उसके यहां आसकता था? क्या देव में कम अक्ल थी?

नहीं।

देवता महाज्ञानी हुआ करते हैं। उनकी बुद्धि मनुष्यों से विशेष विकसित रहा करती है। सकडाल के अन्दर देवता ने विशेष प्रकार की उदारता, पुण्य भावना देखी तभी तो आया।

जिस प्रकार अग्नि के साथ धुआरहना अवश्यम्भावी है उसी प्रकार गृहस्थ की तमाम ससारिक क्रियाओं में पाप आरभ जरूर है। क्रिया पर हस्त से कराई जावे या स्वहस्त से. पाप का भागी तो अवश्य होना ही पड़ता है कुम्हार इस नियम से मुक्त नहीं था पर अन्य कई कारणों से – अर्थात्– आत्मा की विशाल

भावना से साधारणों से बहुत आगे बढ़ा हुआ था। वह कुम्हार पर स्त्री को माता व बहिन मानता, किसी से द्वेष न करता था। ऐसी हालत में इसे क्या मानना चाहिये ? ऐसी उच्च क्रिया करने वाले के पास यदि देवता न आवेगा तो किस के पास आवेगा ?

जिस सेठ के यहाँ अग्नि आदि का आरंभ समारम्भ ऊपर से नहीं दिखता उसे आप धर्मात्मा कहते हैं पर उसके हृदय के अन्दर कैसी २ छुरियें चल रही है 'आव म्हारी हाट में देऊ थारी टाट में' का कैसा धधा चल रहा है, कितने गरीबों के प्राण चूसे जाते हैं इसकी खबर है ?

एक मनुष्य ऊपर से व्यवहारिक काम करने वाला और अन्दर में आत्मा की महा जाग्रति कर रहा है। दूसरा ऊपर से विशेष आरम्भी समारंभी नहीं दिखता पर अन्दर खुंखार भेड़िये की तरह गरीबों का शिकार किया करता है। बतलाइये, मैं पुण्यात्मा किसे कहू ? देवता किसके यहां आवेगा ?

जिसका हृदय पवित्र है उसके दर्शन के लिये देवता आया करते हैं। जो ऊपर से अच्छे २ कपड़े लत्ते पहने, आभूषणों से लदे, अतर फुलैल लगावें पर पेट में छुरीयें चलती रहें, उसके यहा देवता कभी नहीं फटकते-द्वार पर कभी खड़े नहीं रहते।

बहुत से लोग, खेती करने वालों, हांडा घडने वालों, जूती गांठने वालों को पापी समझते है, पर मैं तो कई बडे बडे धनवानों को इनसे ज्यादा पापी मानता हूं ये बिचारे अपनी खरी, मजदूरी करने वाले हैं, इन्हें तो आप पापी कहें पर जो गद्दियों पर पड़े पडे उसे मारूं, उसे गिराऊं, उस का धन स्वाहा कर जाऊं, उसे मुकदमे में हरा दूं ऐसा करू वैसा करूं उसे आप पुण्यात्मा

'महामहाण किसे कहते हैं ?'

जो पुरूप माहणो माहणो २ अर्थात् किसी को मत मारो-मत मारो—मत मारो, ऐसा महा उपदेश देता है, उसे महा महाण कहते हैं।

सामान्य रीति से महाण साधु को तथा श्रावक श्राविका को भी कहते हैं, सब से बड़ा जो महाण है उसे महा माहण कहते हैं।

देवता ने किस महा महाण की खबर दी ?

महावीर प्रभु की।

ये उस समय के महा महाण थे।

महा महाण कैसे होते हैं ? जिनके अन्दर ज्ञान दर्शन चारित्र भले प्रकार से उत्पन्न हो गये हों। महावीर प्रभु के अन्दर ज्ञान दर्शन चारित्र भले प्रकार से उत्पन्न हो गये थे। कोइ प्रश्न करे की क्या उनके अन्दर पहले ज्ञान दर्शन चारित्र नहीं थे ?

थे। पर वे ढँके हुए थे हरेक आत्मा में ये गुण मौजूद हैं पर ढँके रहने के कारण मालूम नहीं पडते। जब इन पर से आवरण दूर हो जाता है तब यह दिखाइ देते हैं। सूर्य बहुत दिनों से वही है फिर आप प्रातः काल उदय होने पर ' उदय हो गया क्यों कहते हैं ? इसीलिये कि वह आपकी आखों से छिप गया था, बाद में फिर दिखने लग गया इसीलिये ' उदय हो गया , ऐसा कहते हैं। यही बात ज्ञान दर्शन चारित्र के विषय में समझना चाहिये।

जिस आत्मा के ज्ञान दर्शन चारित्र शुद्ध हो गये है उसे परमात्मा कहते हैं। आत्मा और परमात्मा के अन्दर उतना ही फरक है जितना शुद्ध सोना और मिट्टी में मिला हुआ सोना में होता हे। साधारण लोगों की द्रष्टि में सोना जितना महत्व रखता हैं उतना

मिट्टी में मिला हुआ सोना नहीं रखता । पर जो विशेषज्ञ है उन्हें दोनों बराबर मालूम होता हैं वे जानते हैं कि मिट्टी अलग करने पर इसमें से शुद्ध सोना निकल आवेगा । अस्तु-

वह देवता सकडाल से फिर कहता हैं कि-हे देवाणुपिया ! कल तुम्हारे यहाँ जो महामहाण आनेवाले हैं, वे भूत भविष्य और वर्तमान काल को अच्छी तरह प्रत्यक्ष रूप से देखने वाले हैं और वे तीनों लोकों को अपनी हस्त रेखा के समान स्पष्टता से देखते हैं। मित्रों ! देवता ने महामाहण का-जिसे आप परमात्मा कहते हैं उनका परिचय इस प्रकार दिया।

यहा विचारणीय बात यह है कि जो परमात्मा तीनों काल और तीनों लोकों को जानने वाला है, क्या वह आपके कामों को नहीं देखता ! आपके काम तो क्या, पर मैं कहता हू कि वह आपके हृदय सागर की उठती हुई प्रत्येक तरग अच्छी तरह जानता है । परमात्मा सत्य से प्रेम करने वाला है । यदि आप परमात्मा को प्रसन्न करना चाहते हैं तो उसे सत्य काम कर प्रसन्न कीजिये । पर आज दिखलाई देता है कि आप दुनिया के बहकावे में आकर दुनिया को प्रसन्न करने के लिये असत्य एव तिरस्करणीय कार्य वे धडक हो कर कर रहे हैं । क्या ऐसे कार्यों से परमात्मा प्रसन्न होगा ?

'नहीं ।'

परमात्मा सब कुछ जानने वाला है उसे प्रसन्न करने के लिये सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये । यह बात सकडाल के लिये ही नहीं थी । यदि ऐसा ही होता तो इस कथा की नौंध शास्त्र में नहीं ली जा सकती । अपने को

समझाने के लिये इस बात की नोंध शास्त्र ने ली है, इस पर हमें विचार करना चाहिये।

कई वार किसी काम करने के लिये हम कहते हैं कि 'कोई देखतो नहीं रहा है ?, पर मित्रों ? भगवान् सर्वत्र देखता है, यह बात हम अच्छी तरह कबूल कर लें तो हम से कोई बुरा काम नहीं हो सकता। वह तीन काल का ज्ञाता है। उस से कोई बात छुपी हुई नहीं रहती, इस लिये शास्त्र के अन्दर उसे 'अरह' कहा है। 'अरह' उसे कहते हैं जिस से कोई बात गुप्त नहीं रहती। चाहे घने जंगल की गुप्त से गुप्त गुफा के अन्दर जाकर की जावे। गुप्त बातों को जानने के लिये उसे किसी की सहायता की जरूरत नहीं रहती इसी लिये उसे 'केवली' कहा है। केवली का अर्थ-सपूर्ण ज्ञान का भंडार-किसी वस्तुको जान ने के लिये जिस किसी इन्द्री मन आदि की सहायता लेने की आवश्यकता नहीं होती है।

महावीर स्वामी के समय में तीर्थंकर नामधारी छ पुरुष थे * उन में महावीरजी निग्रंथ ज्ञात पुत्र के नाम से कहे जाते थे पर श्रीमहावीरजी का तीर्थंकर पद सर्वज्ञ आदि गुणों से विभूषित था वैसा अन्य तीर्थंकर नाम धारियों का न था। इसी कारण देवता ने महावीर स्वामी के तीर्थंकर पद को भलि भांति समझाने के लिये 'महामहाण' आदि विशेष बतलाये।

---

* नोट पूर्णकाश्यप, मशकरी गोशालक, अजितकेश कंबल, ककुधकात्यायन, सजयवलास्थी पुत्र, निग्रंथ ज्ञात पुत्र, ये छ नाम ऐतिहासिक बौद्धपर्व नाम के पुस्तक में दिये हुए है और लिखा है कि सिंहली भाषा में जो बौद्ध ग्रंथ है उन में इन छ तिर्थकरों का नाम व वर्णन लिखा है।

वे महामहाण कैसे हैं, इसके लिये देवता फिर कहता है-वे 'त्रिलोकज्ञ' हैं, तेजोमय है, उन के दर्शन तीनों लोकों के प्राणी हर्ष भर करते हैं। उन के तेज में सारा ऐश्वर्य छिपा हुआ है। देवता लोग भी जिनके दर्शन के लिये उत्कंठित रहते हैं और दर्शन से गद् गद् हो जाते हैं। वे ही त्रिलोक के नाथ अर्हत तुम्हारे यहां आने वाले हैं।

हे सकडाल! उन महामहाण को सब से महान् मान कर तीनों लोक-स्वर्ग मृत्यु पाताल के प्राणियों ने महा पूजन की है।

मित्रों! उनकी पूजन पुष्पादि से की गई होगी, ऐसा आप मत समझना। कारण पुष्पादि से पूजन करने में 'महामहाण' में बाधा आ जाती है। जिन्हों ने 'मत मारो २' की महान् घोषणा की, उनकी पूजन में पुष्प काम में लाये जायें तो महामहाणपना उन में कैसे रह सकता है?

उववाई सूत्र में कोणिक राजाने भगवान् महावीर स्वामी की पूजा की वह पाठ इस प्रकार है—

तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ त जहा-काइयाए, वाइयाए, माणसीयाए, काइयाए ताव सकुइ अग्गहत्थपाये सुस्सुसमाणे णम समाणे अभिमुहे विणएण पंजलिउडे पज्जवासई वाइयाए ज ज भगव वागरेह एव मेअ भंते! तह मेय भंते! अवितह मेय भंते! असंदिद्धमेय भंते! इच्छिअ मेअ भंते! पडिच्छिअ मेअ भंते! इच्छिय पडिच्छिय मेअ भंते! से जहेय तुब्भे वदह अपडि कूलमाणे पज्जुवासति माणसि-याए महया संवेग जणइत्ता तिव्वधम्माणु राग रतो पज्जुवासई

अर्थात् पूजन तीन प्रकार की होती है-मनसा वचसा और कर्मणा।

अर्हंत चाहे कहीं विराजमान हो आन्तरिक मन से उन का स्मरण करना मनकी पूजा है। अर्हंतों के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा कर उनके वचनों के माफिक काम करना वचन की पूजा कहलाती है। और उनको पचांग नमाकर भक्ति पूर्वक नमस्कार करना, इसे कर्म--पूजन समझनी चाहिये।

पूजा पूज्य के अनुसार की जाती है अर्थात् जैसा पूज्य हो वैसी ही पूजा करनी चाहिये। क्या साधु की पूजन डोरा कंठी उनके गले में डालने से हो सकती है? क्या रुपैये पैसे देकर उनकी पूजा हो सकती है? क्या अतर फुलेल पान पुष्पाहार साधु की पूजन में आ सकता है?

'नहीं'।

क्यों? इसी लिये कि ये वस्तुएें, जिन गुणों के कारण साधु पूजनीय गिना जाता है, ऐसे पंच महाव्रतों का नाश करने वालीहै। जिन वस्तुओं के द्वारा गुणों का नाश हो उसे पूजा कहनी चाहिये या अवज्ञा?

'अवज्ञा'।

व्यवहार में भी यह बात देखलें ठाकुर जी की मूर्ति पूजने वाले भाई, ठाकुरजी की पूजन किन वस्तुओं से करते हैं?

'चदन पुष्प आदि से।'

और भेरूजी की?

'तैल बाकला वगैरा से।'

अब तैल बाकलों से ठाकुरजी की और चदन पुष्प आदि से भैरूजी की पूजन की जाय तो?

'उलटा काम कहलायेगा।'

अब विचार कीजिये, जिन अर्हतों ने 'माहणों ३' का महान् उपदेश दिया, पुष्पादि से उनकी पूजन करना क्या उनकी अवज्ञा नहीं है ? वैसे तो उन परमात्मा के चरणों में सर्वस्व समर्पण है पर भक्ति ऐसी करनी चाहिये जिससे वे प्रसन्न हों। वे वीतराग हैं अतएव राग पैदा करने वाली वस्तुओं से उनकी पूजा करना योग्य नहीं कहला सकता। उनकी पूजा मनसा वचसा और कायसा ही हो सकती है।

मैं कई बार कह चुका हु कि यह धर्म वीरों का है-क्षत्रियों का है। आपने बनियों की पोशाक पहनली तो क्या, है तो आप वीर क्षत्रिय सतान ही।

मित्रों! धर्म का पालन कहने मात्र से नहीं होता। मुँह से कहना कुछ और है, और करके बतलाना कुछ और। क्षत्रिय लोग जिसको पचाग से नमस्कार करलेता है, उसके लिये वह माथा समर्पण करने के लिये भी उद्यत रहता है।

नमस्कार खूब सोच समझ कर ही करना चाहिये। जो नमस्कार के योग्य हो, उसे करना चाहिये, न हो उसे न करना चाहिये। महाराणा प्रताप ने बादशाह को नमस्कार के अयोग्य समझा इसीलिये १८ वर्ष तक जगल जगल भटकता रहा, मखमली बिछौने को लात मार कर घास की शय्या पर सोना कबुल किया पर मस्तक न झुकाया। इसे कहते हैं—वीरों का धर्म।

आप लोग जिन साधुओं को मस्तक झुकाते हैं, 'तिखुत्तो कल्लाण मगल' करते है, उनके घर आने पर रोटी देने में भी हाथ थर २ धुजने लग जाय, कहिये यह आपका कैसा पूज्य भाव ? क्या यह धर्म है ? या तो मस्तक झुकाना ही नहीं, यदि झुका दिया

अर्हत चाहे कहीं विराजमान हो आन्तरिक मन से उन का स्मरण करना मनकी पूजा है। अर्हतों के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा कर उनके वचनों के माफिक काम करना वचन की पूजा कहलाती है। और उनको पचांग नमाकर भक्ति पूर्वक नमस्कार करना, इसे कर्म-पूजन समझनी चाहिये।

पूजा पूज्य के अनुसार की जाती है अर्थात् जैसा पूज्य हो वैसी ही पूजा करनी चाहिये। क्या साधु की पूजन डोरा कंठी उनके गले में डालने से हो सकती है? क्या रुपैये पैसे देकर उनकी पूजा हो सकती है? क्या अतर फुलेल पान पुष्पाहार साधु की पूजन में आ सकता है?

'नहीं'।

क्यों? इसी लिये कि ये वस्तुऐं, जिन गुणों के कारण साधु पूजनीय गिना जाता है, ऐसे पच महाव्रतों का नाश करने वालीहै। जिन वस्तुओं के द्वारा गुणों का नाश हो उसे पूजा कहनी चाहिये या अवज्ञा?

'अवज्ञा'।

व्यवहार में भी यह बात देखलें ठाकुर जी की मूर्ति पूजने वाले भाई, ठाकुरजी की पूजन किन वस्तुओं से करते हैं?

'चंदन पुष्प आदि से।'

और भेरूजी की?

'तैल बाकला वगैरा से।'

अब तैल बाकलों से ठाकुरजी की और चदन पुष्प आदि से भेरूजी की पूजन की जाय तो?

'उलटा काम कहलायेगा।'

अब विचार कीजिये, जिन अर्हतों ने 'माहणों ३' का महान् उपदेश दिया, पुष्पादि से उनकी पूजन करना क्या उनकी अवज्ञा नहीं है ? वैसे तो उन परमात्मा के चरणों में सर्वस्व समर्पण है पर भक्ति ऐसी करनी चाहिये जिससे वे प्रसन्न हों। वे वीतराग हैं अतएव राग पैदा करने वाली वस्तुओं से उनकी पूजा करना योग्य नहीं कहला सकता। उनकी पूजा मनसा वचसा और कायसा ही हो सकती है।

मैं कई बार कह चुका हु कि यह धर्म वीरों का है-क्षत्रियों का है। आपने बनियों की पोशाक पहनली तो क्या, हैं तो आप वीर क्षत्रिय संतान ही।

मित्रों ! धर्म का पालन कहने मात्र से नहीं होता। मुँह से कहना कुछ और है, और करके बतलाना कुछ और। क्षत्रिय लोग जिसको पचाग से नमस्कार करलेता है, उसके लिये वह प्राण समर्पण करने के लिये भी उद्यत रहता है।

नमस्कार खूब सोच समझ कर ही करना चाहिये। जो नमस्कार के योग्य हो, उसे करना चाहिये, न हो उसे न करना चाहिये। महाराणा प्रताप ने बादशाह को नमस्कार के अयोग्य समझा इसीलिये १८ वर्ष तक जगल जगल भटकता रहा, मखमली बिछौने को लात मार कर घास की शय्या पर सोना कबूल किया पर मस्तक न झुकाया। इसे कहते है-वीरों का धर्म।

आप लोग जिन साधुओं को मस्तक झुकाते हैं, 'तिखुत्तो कल्लाण मगल' करते है, उनके घर आने पर रोटी देने में भी हाथ थर २ धूजने लग जाय, कहिये यह आपका कैसा पूज्य भाव ? क्या यह धर्म है ? या तो मस्तक झुकाना ही नहीं, यदि झुका

तो उसके लिये सर्वस्व अर्पण करने के लिये तैयार रहना चाहिये।

सर्वस्व अर्पण से आप यह न समझ लेना कि हमारे धन के मालिक साधू बन जायेंगे। नहीं, साधु धन के मालिक कभी नहीं बनते। जो ऐसी लालसा रखते हैं वे सच्चे साधूभी नहीं कहला सकते। खैर—

देवता सकडाल से कहता है–हे देवाणु प्रिय! जब तुम्हारे घर त्रिलोक की विभूति अर्थात महामहाण पधारे उस समय उन मगल प्रभु को वंदना करना, बड़े भक्ति भाव से शय्या संथारा पाट पाटला से प्रतिलाभित करना।

भाइयों! देवता, सकडाल को ऐसी सूचना देकर वापस चला गया।

दवता के चले जाने पर सकडाल विचार करता है कि देवता ने मुझे सूचना दी है, वे महामहाण कौन होंगे? मेरे खयाल से तो वह मेरे माने हुए गोशालक प्रभु ही होंगे। इस के सिवाय दूसरा और कौन हो सकता है।

देखिये, इस कुम्हार की अपने धर्म पर कितनी आस्ता है।

प्यारे मित्रों! सकडाल के घर देवता आवे और आप महावीर के उपासक तथा श्रमणोपासक कहलाने वाले श्रावक देवताओं के पीछे इधर उधर मारे मारे फिरा करे, यह कैसी आश्चर्य की बात है।

आप कहेंगे कि–'महाराज! हमारे घर देवता नहीं आते इसलिये हम जाते हैं।'

मैं पूँछता हू कि–आपको जो वस्तु सकडाल को बड़े परीश्रम से मिली थी वह जन्म से ही मिल गई फिर देवता आकर क्या करे-?

मित्रों ! जरा श्रद्धा रखिये और अपने अन्दर दैवी शक्तियें प्रकट करने के लिये उद्योग कीजिये । देवता लोग आपके चरणों में सिर झुकाएंगे।

जिस समय देवता ने सकडाल को महामहाण के आने की सूचना दी और कहा कि-तू ऐसा मत समझना कि मैं ही उनकी सेवा करूंगा, उनकी सेवा मनुष्य तो क्या देवता तक करते हैं।

'क्यों ?'

इसलिये कि वे 'तच्च कम्म सम्पया' है। 'तच्च कम्म सम्पया' उसे कहते हैं जिसके अन्दर किसी प्रकार का सन्देह न हो। जिस क्रिया के करने से जैसा फल आना चाहिये वैसा ही आवे, उसे तच्च (तथ्य) कहते हैं। जिस क्रिया के करने से जैसा फल आना चाहिये वैसा फल न आवे उसे तच्च (तथ्य) नहीं कह सकते। आम के वृक्ष के 'आम' आना तच्च है। आम के लिये क्रिया की जाय पर आम पैदा न हो उसे तच्च नहीं कह सकते। उदाहरण रूप—आक के वृक्ष को लगा कर आम लाना चाहे, यह क्रिया तथ्य नहीं कहला सकती। यह अतथ्य है।

'देवता ने तथ्य कर्म बतलाया, इससे सकडाल को क्या लाभ होगा ?'

'इस कर्म से महावीर के साथ सबंध स्थापित हो जायगा।'

रेल के ऐंजिन के कुंदे के साथ, डिब्बे का कुंदा जुड़ जाने से ऐंजिन उन डिब्बों को अपने साथ दूसरे स्टेशन पर लगा देता है। सब डिब्बे ऐंजिन नहीं बन सकते। यदि सब ऐंजिन बन जाय तो नैसर्गिक कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। ऐंजिन का धर्म है डिब्बों को खींच कर अपने साथ ले जाना। यदि वह इस काम

तो उसके लिये सर्वस्व अर्पण करने के लिये तैयार रहना चाहिये।

सर्वस्व अर्पण से आप यह न समझ लेना कि हमारे धन के मालिक साधू बन जायेंगे। नहीं, साधु धन के मालिक कभी नहीं बनते। जो ऐसी लालसा रखते हैं वे सच्चे साधूभी नहीं कहला सकते। खैर—

देवता सकडाल से कहता है-हे देवाणु प्रिय! जब तुम्हारे घर त्रिलोक की विभूति अर्थात महामहाण पधारे उस समय उन मंगल प्रभु को वंदना करना, बड़े भक्ति भाव से शय्या सथारा पाट पाटला से प्रतिलाभित करना।

भाइयों! देवता, सकडाल को ऐसी सूचना देकर वापस चला गया।

देवता के चले जाने पर सकडाल विचार करता है कि देवता ने मुझे सूचना दी है, वे महामहाण कौन होंगे? मेरे खयाल से तो वह मेरे माने हुए गोशालक प्रभु ही होंगे। इस के सिवाय दूसरा और कौन हो सकता है।

देखिये, इस कुम्हार की अपने धर्म पर कितनी आस्ता है।

प्यारे मित्रों! सकडाल के घर देवता आवे और आप महावीर के उपासक तथा श्रमणोपासक कहलाने वाले श्रावक देवताओं के पीछे इधर उधर मारे मारे फिरा करे, यह कैसी आश्चर्य की बात है।

आप कहेंगे कि–' महाराज! हमारे घर देवता नहीं आते इसलिये हम जाते हैं।'

मैं पूँछता हू कि–आपको जो वस्तु सकडाल को बड़े परीश्रम से मिली थी वह जन्म से ही मिल गई फिर देवता आकर क्या करे?

के अन्दर सब प्राणियों को स्थान दो, उनके लिये अपने घर के किवाड़ सदा खुले रक्खो।

तीर्थ के अन्दर करुणा-दया होती है। आप तीर्थ कहलाते हैं आप के अन्दर दया अवश्य होनी चाहिये। जिसके अन्दर दया होती है वही धर्मी कहलाता है। जिन धर्मी कहलाने वाले साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओं क अन्दर दया न हो वे धर्मी नहीं कहला सकते।

आज दया के ह्रास हो जाने से ही भाई भाई और बिरादरी बिरादरी में झगड़े चल रहे हैं।

तीर्थ कहलाने वाले भाइयो! आपके अन्दर मनुष्य के प्रति प्रेम हो, यह कोई बड़ी बात नहीं है। आपके अन्दर तो पशुओं तक की दया चाहिये।

थोड़े पशुओं के अभय दान के लिये रुपैये देकर आप यह मत समझिये कि-'हमारा काम पूरा हो गया।' इससे तो आपकी भावना और मंदी होजायगी। आप पशुओं के लिये रु० खर्च करें और मनुष्यों की तरफ से उदासीन रहेंगे तोभी लोग आप को पागल कहेंगे-मूर्ख समझेंगे। जिस मनुष्य क अन्दर पशुकी दया आई और मनुष्य की न आई वह सच्चा दयावान् नहीं कहला सकता। पशु की बनिस्बत दया करने का पहला अधिकार मनुष्य के प्रति होना चाहिये। जिसके हृदय में मनुष्य के प्रति दया आगई समझना चाहिये कि वह १८ पापों से छूट जायगा। जो मनुष्य मनुष्य के प्रति दया नहीं करता, उसके १८ पाप छूट नहीं सकते।

याद रखिये—झूठ मनुष्य के साथ ही बोला जाता है।

में उदासीनता करे तो उसका ऐंजिन पना खोटा है। यदि ऐंजिन इस काम के लिये तैयार हैं पर डिब्बे इस के साथ अपना सबंध नहीं जोड़ते तो उनका कम नसीब समझना चाहिये।

मित्रों! अवतारों के विषय में यही बात समझनी चाहिये। जिस व्यक्ति के अन्दर दूसरों को खींच कर अपने साथ सच्चे मार्ग पर ले जाने की शक्ति होती है, उसे अवतार कहते हैं। हरेक मनुष्य अवतार नहीं बन सकता। अवतार इसी लिये प्रगट होते हैं कि लोगों को अधर्म मार्ग से छुडाकर धर्म मार्ग पर लाने। गीता के अन्दर भी यही बात कही गई है। *

'तीर्थंकर किसको कहते है?'

'जिसके द्वारा ससार मार्ग का उलघन हो।'

'वह तीर्थंकरत्न कैसे पैदा होता है?'

'सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र से।

'ये किस में पैदा होते हैं?'

'मनुष्य में।'

साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ये सब तीर्थ हैं, तीर्थंकर नहीं। तीर्थंकर ऐंजिन है, तीर्थ डिब्बे।

डिब्बे के अन्दर एक वर्ग वाला बैठे और दूसरे वर्ग वाले को उसमें बैठने का हक न मिले तो क्या यह जुल्म नहीं कहलायेगा? महसूल देकर डिब्बे के अन्दर बैठने का हक सब को बराबर है। मनुष्य ही नहीं, हाथी घोडा गाय भैस आदि सब बैठते है। आप (श्रावक वर्ग) तीर्थ रूप डिब्बे हैं, अपने हृदय

* यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् गीता अ० श्लोक।

चोरी, दगा-फटका-लड़ाई-झगड़ा, मुकद्दमेबाजी मनुष्य के साथ ही होते हैं। अतएव मनुष्य से दया (प्रेम) रखनेवाला कभी इन कामोंको नही करता। इसीलिये कहना पड़ता है कि-मनुष्य दया रखनी चाहिये। इसके बिना कोई सिद्धि नहीं हो सकती। चाहे गले में जनोई डालिये, मुंहपर मुहपत्ति बांधिये, ललाटपर तिलक लगाइये या मेरी तरह सिर मुंडवाइये।

मैं कई बार बहनों तथा भाइयों के मुह से सुनता हू-'आलू खाने में इतना पाप है, हरी मिर्चें चीरने से इतनी विराधना होती है,' पर यह कभी नहीं सुनता कि-'हमें मनुष्यों की दया किस तरह करनी चाहिये, गरीबों के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, हम गरीबों का उद्धार कैसे कर सकते हैं।'

प्लेग के समय, जब कि घरवाले भी अपने उत्तर दायित्व को भूलकर, घर के बिमार मनुष्य को छोड़ भाग जाते है, उस समय अमेरिका आदि देशों से आये हुए भाई बहनों को निर्भयता के साथ उसकी चिकित्सा का भार अपने ऊपर उठाये देखते हैं तब सहसा मुहसे निकल पड़ता है—'यह है मनुष्य दया!'

आज आप लोगों में ऐसा विश्वास घुम गया है कि प्रसूता स्त्री को पानी पिलाने से 'तेले' का दड लेना चाहिये।' हाय हाय, यह कैसा उलटा न्याय। क्या इस निर्दयता को भी दया कहनी चाहिये? मै तो नहीं कह सकता।

*   *   *   *   *

महामहाय के पधारने की सूचना देकर देवता अपने स्थान पर चला गया, तब से रात भर सकडाल के मन में यही विचार

आन्दोलित हो रहा था कि हो न हो ये महामहाय मेरे पूज्य गुरु श्री गोशालक प्रभु ही होंगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब हजारों नर नारियों के झुंड के झुंड सहस्त्रवन् उद्यान के अन्दर पधारे हुए महामहाय के दर्शन करने जाने लगे तब सकडाल भी स्नानादि से निवृत्त हो वस्त्र आभूषण पहन जाने को तैयार हुआ।

बहुत से भाई सोचते होंगे कि 'स्नान से निवृत्त हो' ऐसा कह कर तो महाराज ने आरंभ समारम्भ करना बतला दिया। इन भाइयों को मैं क्या कहूं ? क्या गणधरों के लिखे हुए पाठ को दबा लूं ? और आप के अंध विश्वास के अनुसार उपदेश दूं ? मित्रों ! मेरे से तो ऐसा नहीं हो सकता। गणधरों के पाठों को दबा लूं ऐसी मेरी भावना नहीं है।

'सकडाल ने मंगल वस्त्र पहने' शास्त्र में ऐसा पाठ मिलता है। इस से मालूम होता है कि गृहस्थों के वस्त्रों में भी दो भेद होते हैं-एक मांगलिक, दूसरा अमांगलिक। शुद्ध और स्वच्छ वस्त्रों को शास्त्रकार मांगलिक कहते हैं और अशुद्ध तथा गन्दे वस्त्रों को अमांगलिक। आज कल के श्रावकों में बहुत से भाई अमांगलिक वस्त्र पहनने में ही अपना मंगल समझते हैं पर सच पूछा जाय तो यह समझ गृहस्थाश्रम धर्म से विरुद्ध है। यदि अमांगलिक वस्त्र पहनने से ही गृहस्थाश्रम धर्म की श्रेष्ठता होती तो जगह जगह श्रावकों की वर्णन विधि में 'शुद्ध मंगल वस्त्र पहने' ऐसा कथन क्यों कर चलता। अतएव जैन धर्म की अवज्ञा हो, श्रावकों को मलीन रखने का आरोप साधुओं पर आये ऐसा अनुचित व्यवहार कोई बुद्धिमान् श्रावक नहीं करता।

सकडाल ने मंगल वस्त्र परिधान किये और थोड़े पर बहु मूल्य आभूषणों को पहन कर मनुष्यों से घिरा हुआ पोलासपुर के उद्यानकी तरफ रवाना हुआ।

वहां भगवान् महावीर के तेजस्वी रूपको देख कर प्रेम से गद् गद् हो भक्ति पूर्वक वन्दना और स्तुति की।

बाद में भगवान् ने सकडाल आदि श्रावकों को अपनी पवित्र अमोघवाणी सुनानी आरम्भ की।

मित्रों! यहां पर 'सकडाल आदि श्रावकों को,' इस पर विचार करने की जरूरत है। वहां पर बहुत से सेठ–साहूकार राजा आदि होंगे, उनमें से किसी के नाम के अगाडी 'आदि' शब्द न लगा कर सकडाल के अगाड़ी क्यों लगाया? इसका मतलब यही था कि पहले गुणों की पूजा होती थी। अमुकचंदजी सा' ही अगुआ बने रहें, यह बात पहले नहीं थी। जो गुणों में विशेष हो वही अगुआ।

भगवान् महावीर की देशना गंगा की पवित्र धारा के समान चलने लगी। उस अमोघ वाग्धारा की प्रशंसा कौन कर सकता है? अहा, उन लोगों को सहस्रशः धन्य है जिन्हों ने भगवान् की वाणि सुनी।

मित्रों! उन लोगोंने भगवान् की अमोघ वाणि सुनकर आत्मगुण प्रगट किया। आप लोग मेरे से उपदेश सुनते हैं। मैं उन भगवान् की वाणि सुनाता हूं। आप इसे सुनकर कुछ आत्म गुण प्रगट करेंगे तो बड़ा कल्याण होगा।

भगवान् ने अपनी अमोघ धारा के अन्दर क्या फरमाया था; इसका इतिहास तो मेरे पास नहीं है पर उन्होंने अपने

उद्देश्य की पूर्ति के लिये मनोविजय का उपदेश जरूर दिया होगा।

मित्रों! मन पर विजय जरूर करना चाहिये। जो मन पर विजय नहीं करता उसके दुर्गुण दूर नहीं हो सकते। संसार के अन्दर जितने विजयी होते हैं उन सब से महाविजयी वह है जिसने मनका विजय कर लिया है।

एक राजा ने अपने भुज बल से बड़ी भारी विजय प्राप्त की। जब वह विजय प्राप्त कर घर लौटा तो बड़ी खुशी के साथ माता के पास नमस्कार करने गया। माता ने उसे देखकर मुंह फेर लिया। मातृ भक्त राजाने हाथ जोड़कर कहा—' माताजी! मेरे से क्या अपराध हुआ? आज मैं विजयी होकर आया हूं मैंने अपने बल को और आप की कूख को लजाया नहीं है। आप की कीर्ति सब जगह फैल रही है। माताजी! ऐसे समय में आप नाराज होकर बैठे हैं, यह क्या बात? कृपा कर कहिये।

माता गंभीर होकर—तूने क्षत्रिय वीरता तो पालन करली पर अभी तू कायर है।

राजा चकित होकर—' यह कैसे माताजी?'

माता—

न विजये

बेटा! तूने संग्राम में विजय प्राप्त करली पर मैं इसे असली वीरता नहीं मानती। तुमने जड़ वस्तु को अपने कब्जे में करली पर इससे तुम्हारा क्या विकाश होगा? यह तो तुम्हें और दुखी बनाने वाली वस्तु है। मैं सच्चा विजयी उसे मानती हू जिसने मनोविजय कर लिया हो। तूने अभी तक एक भी इन्द्रिय को वश में नहीं किया, मैं तुझे वीर कैसे कहूं?

एक तरफ हजारों युद्ध में विजय प्राप्त करनेवाला रावण और दूसरी तरफ राम। राम ने रावण को जीत लिया अब विजयी किसे कहना चाहिये?

'राम को।'

क्यों? इसलिये कि उसने रावण को जीत लिया। रावण को असली हरानेवाला राम नहीं, पर उसकी इन्द्रियें थीं। यदि वह इन्द्रियों से न हार जाता तो उसे कोई न हरा सकता था। रावण इन्द्रियों से हार गया इसी लिये इन्द्रिय-विजयी राम ने रावण को हरा दिया।

माता अपने पुत्र को फिर कहती है—बेटा! तूने बड़ा भारी युद्ध जीत लिया पर अपने क्रोध को न जीत सका, बता मैं तुझे कैसे विजयी कहूं? एक स्त्री के थोड़े से हाव भाव से तेरा मन चंचल हो उठता है, संगीत के थोडे शब्दों को सुनकर तू कान देने लगता है, जिह्वा तेरे वश नहीं, आंखें तेरे अधिकार में नहीं, बतला मैं तुझे किस प्रकार विजयी कहूँ? बेटा! याद रख, यदि तूने मनो विजय करलिया—इन्द्रियों पर अधिकार जमा लिया तो मैं मानूंगी कि तूने त्रिलोक को जीत लिया।

मित्रों! यह बात तो माता पुत्र की हुई। माता के कथनानुसार राजा ने किया पर अपन ने क्या किया? जरा इसका विचार करना चाहिये। दूसरों की बातों से अपने को क्या लाभ? जब अपन स्वयं करेंगे तभी अपने को लाभ होगा।

देशना (उपदेश) जब समाप्त हो चुकी तब महावीर प्रभु सकडाल से पूछते हैं—

सकडाल! कल तू अपनी अशोक वाटिका में बैठा था उस

समय तेरे पास एक देवता आया था ? क्या उसने खबर दी थी कि कल एक महामहाण आने वाले हैं ? क्या यह भी कहा था कि उनकी वंदना नमस्कार सेवा करना ? और यह सलाह दी थी कि भात, पाणी, वस्त्र, पात्र, पाट, पाटला प्रतिलाभना ?

सकडाल नम्रता से—' हां प्रभु, कहा था ? '

महावीर—उस देवता के चले जाने पर तेरे मन में ये विचार आये थे कि देवता ने कहे वैसे महा गुण मेरे गुरु गोशालक में ही हो सकते थे ? आज प्रातःकाल तूने सुना कि महामहाण पधारे हैं तब तेरे मन में ये विचार उठे थे कि ' मेरे गुरु गोशालक पधारे हैं, चलू दर्शन करू' क्या ये बातें सच हैं ?

सकडाल—सत्य है प्रभु, मैं गोशालक को ही पधारे जान कर यहां आया हूं।

महावीर—सकडाल ! जिस महामहाण के लिये देवता ने तुझे सूचना दी थी वह तेरे गुरु गोशालक के लिये नहीं थी।

सकडाल महावीर प्रभु के वचन सुन कर बड़ा चकित हुआ। मन में विचार करने लगा-इन्हों ने मेरे मन की गुप्त की गुप्त बातें प्रगट कर दीं, ओः इनके अन्दर कैसी अद्भुत शक्ति है ? देवता ने महामहाण के जिस प्रकार के लक्षण प्रगट किये थे वे सब लक्षण इनके अन्दर मिलते हैं, तो क्या ये (महावीर) मेरे गुरु गोशालक प्रभु नहीं हैं ? न होंगे। लोग इन्हे महावीर प्रभू के नाम से परिचय कराते हैं। ये गोशालक नहीं हैं, मत हों, ये सच्चे महा-महाण हैं इसलिये इनकी वंदना आदि करनी चाहिये। मैंने पहले जो वंदना की थी, वह मेरे गुरु गोशालक जान कर की थी। अतः मुझे इनको दुबारा नमस्कार करना चाहिये।

सकडाल खड़ा हुआ। महावीर प्रभुको वन्दना की, नमस्कार किया, बाद में हाथ जोड़ कर कहा–

पूज्यवर! पोलाशपुर नगर के बाहर मेरी ५०० दुकानें हैं, कृपा करके वहां पधारिये। वहां आपके योग्य सब प्रकार का सुभीता है।

प्रभूने प्रार्थना स्वीकार की। उसके वहां पधारे।

सकडाल ने प्रभु की सेवा, जिस प्रकार देवता ने बतलाई थी उसी प्रकार बड़ी भक्ति के साथ की।

भाइयों! महावीर प्रभु कुम्हार के घर गये। अब जरा इसका तुलनात्मक दृष्टि से विचार कीजिये इन्द्र, तीर्थंकर प्रभु के जन्म जात कल्याण को पूजता है पर उसके घर न जाकर कुम्हार के घर गये। अब बतलाइये, इन्द्र बड़ा हुआ या यह कुम्हार?

'कुम्हार।'

आज यदि कोई मुनि, कुम्हार के घर चला जाय तो 'हा-हू' मचाना शुरू कर देते हैं। क्या आपने महावीर के महातत्त्वों के गूढ रहस्यों को जानने का प्रयत्न किया है? यदि किया होता तो आपके ऐसे संकुचित भाव न रहते। महावीर जानते थे कि–यह कुम्हार है, इसके यहां मिट्टी पानी अग्नि आदि का आरंभ समारंभ होता होगा पर फिर भी उसके घर पधारे। यहां यह बात तो निश्चय ही समझ लेनी चाहिये कि महावीर प्रभु अकेले न पधारे होंगे साथ में गौतम आदि गणधर और दूसरे मुनि भी होंगे।

इन्द्र के घर प्रभु पधारते तो उनका अतिथि सत्कार ज्यादा होता पर उसके वहां न जाकर मनुष्य का आतिथ्य स्वीकार

करते हैं। मित्रों! आपके पास कितनी बड़ी सामग्री है, ऐसी सामग्री देवता के पास भी नहीं है। आप अपने को तुच्छ क्यों समझ रहे हैं? क्यों नहीं अपनी शक्ति को प्रगट करते?

आज प्रभु कुम्हार के घर क्यों पधारे? इसलिये कि जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी का घड़ा बनाता है उसी प्रकार प्रभु मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाने के लिये।

सकडाल सभ्य मनुष्य था पर सच्चे मनुष्य में जो खास गुण होता है उसकी उसमें कमी थी अर्थात् वह होनहारवादी था। वह समझता था कि जो कुछ होता है होनहार से ही होता है। उद्योग करने से कुछ नहीं होता। इसी भ्रम को दूर करने के लिये भगवान् ने जब वह चाक पर उतरे हुए वर्तनों के कुछ करके पकने पर अपनी शाला के बाहर निकाल रहा था तब प्रश्नोत्तर करने शुरू किये।

आप लोगों को यह बात सुनकर आश्चर्य होता होगा कि जिसके ५०० दुकानें थीं, सैकड़ों नौकर थे, वह अपने हाथ से वर्तन बनाने का काम करता था? बेशक वह बड़ा धनिक था, सैकड़ों नौकरों का मालिक था, फिर भी अपने हाथ से काम करता था। आज कल आप मालिक किसे कहते हैं?

'जो स्वय काम न करे।'

'सेठानी किसे कहते हैं?'

'जो मजदूरनियों से काम कराती हो।'

हाथ से काम करने में सेठ और सेठानीजी को शरम आती है, उन्हें छोटे बन जाने का भय रहता है, पर मैं कहता हूं कि यह सब इनका ढोंग है। ऐसे तुच्छ विचारों को हृदय में स्थान देना

अपनी तुच्छता बतलाना है। जो सेठ या सेठानी अपने घमंड में रह कर नौकरों ही के द्वारा काम करवाते हैं, वह काम यथा योग्य सम्पन्न नहीं होता। आज कल उस काम का सत्यानाश हो जाता है। जो मालिक या मालकिन अपने हाथों से नौकरों से डबल काम करते हैं, नौकरों पर उनका पूरा प्रभाव रहता है और वे आलस्य रहित बन कर काम ठीक ढग से करते हैं। जो मालिक या मालकिन आलस्य में पड़े रहते हैं; उनके नौकर कुछ भी काम सुधार कर नहीं करते और मुफ्त में पड़े २ तनख्वाह खाते हैं।

मित्रों! यह केवल आप लोगों के लिये ही नहीं है पर राजा महाराजाओं के लिये भी है। जो राजा महाराजा महलों में पड़े रहते हैं, राज्य का काम राज कर्मचारियों के भरोसे डाल देते हैं, उनके राज्य का नाश हुए बिना नहीं रहता। आप पृथ्वीराज चौहान के नाम से अनजान न होंगे। यह एक बड़ा भारी वीर पुरुष था। इस की वीरता की कहानियां मुर्दा दिलों में भी जान डालने वाली हैं। इसने कई काम ऐसे किये जिन को देख कर या सुन कर लोगों को भ्रम हो जाता था कि यह कोई पुरुष है या देवता! पर जब से इसने संयुक्ता रानी के साथ १२ वर्ष तक महल में ही रहना किया, राज्य का कुछ भी काम स्वय न कर सब कार्य राज्य कर्मचारियों के ही भरोसे पर रख दिया तब से इसकी सेना शिथिल पडने लगी और राज्य का नाश होने लगा। फल स्वरूप स्वय ही गुलाम न बना पर सारे भारत को गुलाम बना दिया।

आपके कानों में सदा ये शब्द गूंजते रहते हैं कि—'यथा राजा तथा प्रजा' पर इससे उलटा भी हो सकता है—' यथा प्रजा

तथा राजा।' जो राजा प्रजा के मत के अनुसार न चले, सवल प्रजा उस राजा को अपने पद से नीचे उतार देती है और दूसरा राजा स्थापित कर देती है। इतना ही नहीं, प्रजा 'स्वराज्य' भी स्थापन कर देती है।

राजा का प्रधान कितना ही विश्वास पात्र और कार्य दक्ष क्यों न हो, राज कर्मचारी कितने ही स्वामी भक्त, सेवा निष्ठ क्यों न हो पर राजा यदि आलसी ढोंगी होगा तो इन दुर्गुणों की छाप उनपर (राज कर्मचारियों पर) पड़े विना न रहेगी।

सेठों को भी यह बात याद रखने की है कि स्वय भांग-ठंडाई पीने में मस्त रहें और सब काम मुनीमों गुमास्तों के भरोसे पर ही रक्खेंगे तो बुरे दिन नजदीक आने में देर न लगेगी।

जो किसान हल-जुताई आदि के कष्टों से डर कर मजदूरों के ही भरोसे पर लाभ प्राप्त करना चाहता है उसकी यह आशा निष्फल हुए विना नहीं रहती।

अगाड़ी के पुरुष हरेक काम अपने हाथों करते थे। जो मनुष्य अपने काम में भी लज्जा करता है वह सचमुच में आलसी है। और इस से भी आलसी तथा अपना ही सत्यानाश करने वाला वह शख्स है जो अपनी आजीविका के काम को स्वय अच्छी तरह नहीं जानता।

जो मनुष्य जिस काम को नहीं जानता उसको उससे होने वाले फल का अधिकार नहीं है। जो कपड़ा बुनना नहीं जानता उसे कपड़ा पहनने का अधिकार नहीं है। जो अन्न पैदा नहीं कर सकता उसे अन्न खाने का हक्क नहीं है। बुद्धिमानों को इसी प्रकार और-और बातें भी समझ लेनी चाहिये।

भाइयों ! यह बात मैं अपने मन से ही नहीं पर शास्त्र के आधार से कह रहा हू । पहले के जमाने में प्रत्येक को ७२ कला फार्जियात सीखनी पड़तीथी । क्या ७२ कला में खेती करना कपड़ा बुनना आदि कार्य नहीं आ जाते ?

' आ जाते हैं । '

शास्त्रों के अन्दर पालित श्रावक का वर्णन आया है । यह निग्रन्थ प्रवचनों का जानने वाला था और था महावीर प्रभु का सच्चा दृढ धर्मी श्रावक । यह ७२ कलाओं का जानने वाला था। उसका विवाह समुद्र के पार किसी द्वीप की वणिक पुत्री के साथ हुआ था । इसके पुत्र का जन्म समुद्र में हुआ था इस लिय उसका समुद्रपाल नाम रक्खा था । इसको भी ७२ कलाऐं सिखलाई गई थीं । शास्त्र के अन्दर इसका कथन आया है-

आज जैन धर्मका बहुत सकुचित कार्य क्षेत्र मान लिया गया है । अन्य लोग यही समझते होंगे कि अत्यन्त सकुचित वृत्ति धारण करनेवाला ही जैन धर्म पालन कर सक्ता है । साधारण मनुष्य के लिये भी जब यह पालना कठिन है तब राजा महाराजाओं के लिये कितना मुश्किल होगा । पर मित्रों ! असलियत में यह बात नहीं है । जैन धर्म का पालन बड़े २ महाराजाओं से ले कर साधारण से साधारण पुरुष भी कर सक्ते है । जैन धर्म विशाल धर्म है । इस के श्रावक पहले अपनी जरूरत की चीजों के लिये दूसरों का मुह नहीं ताका करते थे । जो परतन्त्रता से अपना जीवन व्यतीत करते हैं-छोटी २ चीजों के लिये भी जो मुहताज बने रहते हैं । उन्हे व्यवहारिक सुख नहीं मिल सक्ता ।

भारतवासियों ने स्वय काम करना छोड दिया, दूसरे के

मुंहकी तरफ ताकने लग गये तभी से इस देश का पतन होने लगा।

आज भारतवासी ऐसे पराधिन हो गये कि इनको अन्य भाषा, अन्य वेश, अन्य प्रकारका रहन सहन, अन्य नाच रग बहुत पसन्द आते हैं। इन्हें भारतकी भाषा, भारतका वेष, भारत का रहन सहन बहुत बुरा मालूम होता है। पराये देश से भीख मागते हैं—'कपड़ा भेजो।'

यहां के निवासियों का नैतिक पतन भी खूब हुआ। अधिकांशों का तो यह हाल है कि वे उपदेश के पात्र कहे जाने की भी योग्यता नहीं रखते।

कुदरत का नियम है कि दुःख निर्बलों को ही प्राप्त होता है, सबलों को नहीं। लोग विचारे बकरों को बलिदान करते है क्या कोई सिंह को भी करता है ?,

आज आप लोग इतने बैठे हुए हैं यदि कोई एक लट्ठ-धारी आ जाय तो उसका सामना कितने कर सकते है ?,

श्रावकगण-' सब भाग जायें।,

बस, क्या आप इसी बल पर महावीर के शिष्य बने हुए हैं ? क्या महावीर के श्रावक पहले ऐसे डरपोक ही हुआ करते थे ? नहीं नहीं, वे ऐसे वीर होते थे कि राक्षस के हाथ में खड़-खडाती तलवार देख कर भी डर नहीं लाते थे।

मित्रों आज आपकी और आपके देशकी इतनी अवनत दशा आलस्य के कारण ही हो रही है। आलसी का कोई भी सुधार नहीं हो सकता।

सकडाल आलसी नहीं था इसी लिये भगवान् ने उसे सुधारने का प्रयत्न किया। यदि वह आपकी तरह आलसी होता तो क्या वे उसे सुधार सकते थे ?

'नहीं।'

मित्रों! अब भगवान् उस सकडाल की परिचा लेते हैं क्या लेते हैं, सुनिये—

'सद्दालपुत्ता! एस ण कोलाल भण्डे कओ ?,

'सकडाल पुत्र! ये घड़े किस प्रकार बने हैं ?,

देखिये महावीर का युक्तिवाद! क्या उन्हें मालूम नहीं था कि घड़े किस प्रकार बनते हैं? मालूम थी पर लोगों को पाठ देने के लिये और उसके (सकडाल के) कार्य की सिद्धि के लिये यह प्रश्न करते हैं।

सकडाल उत्तर देता है—

एसणं भन्ते! पुव्विं मट्टिया आसी, तओ पच्छा उदएणं मीयति छारेणय करसेणय एक करेइ मिसभ्भति चक्के आरोहिज्जति

प्रभो! पहले मिट्टी लाई गई बाद में पानी से भिगाई गई, इसके बाद राख और लाद मिलाई गई फिर खूब गोंदी गई, जब मिट्टी अच्छी तरह काम लायक बन गई तब चाक पर चढ़ा कर ये वर्तन बनाये गये हैं।

मित्रों! वर्तन बनाने का तो क्या सारी बातों का ज्ञान भगवान् को था पर फिर भी कुम्हार से ऐसा प्रश्न किया इसका क्या मतलब?

इसका मतलब यह था कि सकडाल भवितव्यवादी 'होन हारवादी' था। वह पुरुषार्थ को नहीं मानता था। इसीलिये उसी के मुह से पुरुषार्थ की सिद्धि कबूल कराने के लिये भगवान् ने यह प्रत्यक्ष का प्रश्न पूछा था।

सकडाल ने पच में आकर अर्थात् अपने पच को न गिरने देने के लिये (भगवान् के प्रश्न के आशय को समझ कर) कहा—' भगवन्, यह सब होनहार से होता है, हम लोगों ने जो कुछ भी काम किये हैं वे सब होनहार के प्रताप से ही हुए हैं।

सकडाल ने ऐसा जवाब केवल अपने पच को न गिरने देने के लिये ही दिया था पर वास्तव में कार्य की सिद्धि तो पुरुषार्थ से ही होती है।

कार्य सिद्धि के लिये तीन साधनों की जरूरत रहती है। जैसे—उपादान कारण, निमित्त कारण और कर्त्ता। घडा इन साधनों से ही बना। घडा बनाने के लिये जो मिट्टी आई वह उपादान कारण, घडा बनाने के चाक आदि साधन निमित्त कारण क्योंकि बिना कारणों के कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती और तीसरा कार्य करने वाला अर्थात् कर्त्ता। इन तीनों में से एक की भी खामी रह जाय तो कार्य नहीं बन सकता।

शायद आप लोग इसको अच्छी तरह न समझ सके होंगे। अतः रोटी के ऊपर यह बात घटा कर समझाता हूं (बहिनें रोटी बनाती हैं। रोटी आटे की बनती है। रोटी बनाने के लिये आटा उपादान कारण, साथ में चकला बेलन आदि निमित्त कारण है और बनाने वाली बाई कर्त्ता हुई।

महावीर प्रभुने जो प्रश्न किया उसका उत्तर मिलने पर भगवान फरमाते हैं—सकडाल ! यह घड़ा पहले नहीं था, जब था नहीं और बाद में बना, इसमें क्रिया जरूर की गई, जब क्रिया की गई तो क्रिया के सद्भाव में कर्ता अवश्य ही साबित होता है। क्रिया के बिना कर्म नहीं और कर्ता के बिना क्रिया नहीं। कर्ता के पुरुपार्थ करने पर ही क्रिया बनती है, यह बात

हरेक जानता है। तू जरा मोटी बात से समझ कि घड़ा बनाने के लिये सब से पहले मिट्टी लाई गई, मिट्टी को घड़ा नहीं कह सकते। बाद में मिट्टी भिगोकर उसमें खाद व राख मिलाई गई, तब भी उसे घड़ा न कहा और न कह ही सकते हैं फिर उस कमाई हुई मिट्टी को चाक पर चढ़ाई, क्रिया करने पर उसका घडा बनाया गया। प्रिय सकडाल ! इस घड़े बनाने में उठाण कर्म बल वीर्य पुरुषार्थ प्रधान है, यह बात तू मानता है ?

सकडाल—' नहीं।'

महावीर प्रभु—यदि नहीं तो क्या मानता है ?

सकडाल पत्त में आकर कहता है—घडा बिना उद्यम भवितव्यता से बना है।

महावीर—तुमने यह नियतिवाद कहा, क्या यह ठीक है ?

सकडाल–' जी।'

महावीर–' तब एक प्रश्न उठता है।'

सकडाल–' क्या ?'

महावीर–' तेरे कच्चे तथा पके घडों को कोई पुरुष चुरा ले जाय, इधर उधर बिखेर दे, तोड़ फोड डाले तो तू उस पुरुष के साथ क्या बर्ताव करेगा ? तेरी भार्या अग्निमित्रा, जिसे तू बहुत प्यार करता है यदि उस पर कोई दुष्ट जबरदस्ती अनाचार सेवन करे तो क्या तू उसे दंड देगा ?' *

* सद्दालपुत्ता ! जहण तुब्भे केइ पुरिसे पक्केणय पातह्यं कोला लभंड अवहरेज्ज वा विक्करिक्ष वा भिन्देज्ज वा अच्छिन्देज्ज वा परिट्ठवेज्ज वा अगिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं उरालाइं विउलाइं भोगभोगाइं भुज्जमाणे विहरेज्जा, तस्स ण तुम्म पुरिसस्स किं दंड वत्तेज्जासी ?

ऽ अहणं त पुरिस आउसेज्ज वा हणेज्ज वा बाधिज्ज वा तज्जेज्ज वा ताडेज्ज वा निच्छोडेज्जा वा निब्भच्छेज्ज वा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्ज वा।

सकडाल–मैं उस दुष्टको अवश्य दंड दूंगा। मैं उसे लातों से घुस्सों से, लकडी से, सब प्रकार दंड दूगा और मौका आ पड़े तो उसके प्राण भी ले लूं !

सकडाल शायद ऐसा जोशीला उत्तर नहीं देता 'पर तेरी भार्या अग्निमित्रा पर कोई दुष्ट जबरदस्ती अनाचार सेवन करे तो क्या तु उसे दंड देगा ?,' इसी के उत्तर में उसने ऐसा कहा।

मित्रों ! सकडाल ने ऐसा उत्तर क्यों दिया, इसका रहस्य वही समझ सक्ता है जो वास्तव में पति कहलाने योग्य है। इसका रहस्य वह मनुष्य नहीं समझ सक्ता जो 'भैयों' के भरोसों पर स्त्री की रक्षा करते हैं। आज लोग छोटे २ बच्चों का व्याह कर देते हैं। वे बिचारे समझते ही नहीं कि व्याह किस चिडिया का नाम है। जब वे समझते ही नहीं, तब स्त्रियों की रक्षा का रहस्य वे क्या समझते होंगे ?

महावीर प्रभु कहते है कि–भाई, तू कहता है कि 'मैं उस पुरुप को दंड दूंगा' यह बात तो तेरे सिद्धान्त के खिलाफ मालूम हुई कारण तू कहता है कि जो होनहार होता है वही होता है। तब उस पुरुप ने—जिसने घड़े आदि वर्तन चुराये, तोडे, फोडे या फेंक दिये उसने यह काम होनहार के अधीन होकर ही किया। इसी प्रकार जिस पुरुष ने तुम्हारी स्त्री पर अत्याचार किया वह भी होनहार के वश से किया फिर तुझे दंड देने की क्या आवश्यक्ता ? यदि तू देता है तो यह काम तेरे 'नियतिवाद' के विरुद्ध है। क्या तुझे ऐसी हालत में नियतिवाद स्वीकार है ?

सकडाल का हृदय हिलगया। कुछ विचार में पडा। उसके मन ने कबूल किया कि पुरुषार्थ में सब कुछ है, आलसी जीवन से कुछ भी नहीं होता।

सकडाल ने स्त्री पर अत्याचार करने वाले को दंड देने का कहा, यह उसका पुरुषार्थ था। कायर कुछ भी नहीं कर सकता वह अपनी कायरता से कहता है कि ' मैं अत्याचार करने वाले को क्षमा देता हूं।' पर वास्तव में इसे क्षमा नहीं कह सकते! यह क्षमा ' अधम क्षमा ' है।

मित्रों! इस बात को शायद आप अच्छी तरह न समझ सके होंगे, इसलिये उदाहरण देकर समझाता हूं—

तीन पुरुष साथ जा रहे है, किसीने उनको गालियें दीं। उनमें से एक आदमी सोचता है-इसने हमें चोर, बदमाश, लपट आदि कहा है, क्या वास्तव में मैं चोर हूं? यदि मैंने चोरी, बदमाशी, लपटता आदि की, तब तो मुझे इन विशेषणों से पुकारना ही चाहिये। यह कोई गाली नहीं है। इसने तो मेरा गुण प्रगट किया है। यदि मैंने चोरी आदि नहीं की और इन विशेषणों से ताना मारता है तो मुझे समझना चाहिये कि चोर, बदमाश, लपट को लोग बुरा कहते है, समाज में इनका आदर नहीं होता, यह मेरे लिये गाली नहीं पर उपदेश है। मुझे इसमें बुरा मानने की क्या जरूरत?

अब दूसरा मनुष्य विचार करता है कि इसने मुझे व्यर्थ में गाली दी, यह मेरे लिये इज्जत हतक की बात है, लोग सुनकर मुझे अ-विश्वास की दृष्टि से देखेंगे अतः इसे अतिवाद रूप में कुछ दंड देदेना चाहिये या राज्य कानून से इसे दंडित करना चाहिये ताकि भविष्य में किसी को झूठा बदनाम न करे।

तीसरा, उस मनुष्य की गालियें सुन कर जलता है, मन में द्वेष रखता है, पर इसलिये चुप चाप रहता है कि यदि मैं कुछ

प्रतिकार करूंगा तो यह बड़ा आदमी है, मुझे कहीं फसा देगा या जूते मारेगा, इसलिये चुपचाप रहना ही अच्छा है।

मित्रों! एक तो वह पहला पुरुष था जिसने मनको शान्त रख कर क्षमा की। दूसरा वह मनुष्य है जिसने यथोचित उसका प्रतिकार किया, उसका अपमान सहन न किया और तीसरा वह पुरुष है जिसने मन को शान्त नहीं किया पर डर कर शांति रखता है। आप इन तीनों में से किसे अच्छा समझेंगे?

'पहले को'।

क्यों? इसलिये कि उसने शक्ति रखते हुए भी शान्ति के द्वारा क्रोध का बहिष्कार कर दिया है। पहले मनुष्य ने सच्ची शांति प्राप्त की, दूसरे ने अपने व्यवहार का पालन किया और तीसरे ने कपट पूर्ण शांति अवलंबन की, इसलिये पहला ऊंचा, दूसरा मध्यम और तीसरा नीच है।

शास्त्र के अन्दर पहले मनुष्य को सात्विक, दूसरे को राजसिक और तीसरे को तामसिक प्रकृति का कहा है।

आज संसार में तामसिक प्रकृति अर्थात् तमोगुण बहुत बढ़ गया है इस लिये संसार में शांति नजर नहीं आती।

तमोगुणी कायर होते हैं।

जो मनुष्य घर के कार्य भार को वहन न कर सकने के कारण दीक्षा अंगीकार करता है, वह सच्चा त्यागी नहीं कहला सकता।

शास्त्र के अन्दर अहंकारी, क्रोधी, प्रमादी, रोगी आदि के लिये दीक्षा ग्रहण करने का निषेध है।

मित्रों! महावीर प्रभु की युक्ति संगत दलील सुन कर सकडाल

का हृदय हिल गया यह बात मैं कह चुका हूं। फिर क्या हुआ इसके लिये शास्त्र लिखता है—

'तएणं से सद्दालपुत्ते आजीवि ओवासए समणं भगव महावीरं वन्दइ नमसइ २ चा ... '

अर्थात्—सकडाल ने श्रमण भगवान् महावीर को भक्ति पूर्वक नमस्कार किया।

सकडाल ने पहले महावीर प्रभु को जो वंदना आदि की थी; वह, देवता के कहने से, महावीर के अतिशय से या लोगों के लिहाज से की थी। हार्दिक प्रेम से नहीं।

प्रश्न उठ सकता है कि उसने ऐसा क्यों किया ? इसका उत्तर यही है कि वह निश्चय और व्यवहार दोनों को पालता था।

बुद्धिमान् श्रावक ऐसा ही करता है। पर आज कल देखा जाता है कि बहुत से भाई निश्चय पर बहुत जोर देते हैं पर व्यवहार की तरफ बिलकुल उपेक्षा भाव दिखाते हैं। इस वक्त ये भाई भूल जाते है कि व्यवहार का सम्यक् प्रकार से पालन करने पर ही निश्चय का रास्ता ठीक हाथ में आता है। जो व्यवहार को तुच्छ समझता है उसे 'निश्चय' अच्छी तरह प्राप्त नहीं होता। निश्चय पर विशेष आग्रह करने पर व्यवहार हवा हो जाता है। याद रखना चाहिये कि लाखों का पालन करने वाला व्यवहार ही है। साधु और श्रावक का काम भी व्यवहार से ही चलता है।

मित्रों ! हरेक वस्तु के दो अंग होते हैं। एक निज का और दूसरा रक्षा का। उदाहरण रूप-धन और तिजोरी का संबंध। धन सब प्रकार से गृहस्थों के लिये उपादेय है पर उसकी रक्षा के लिये तिजोरी की गिनती भी उसी के साथ है।

दूसरा उदाहरण,-आपको आमकी जरूरत है, आप बाजार गये और आम खरीदे । यद्यपि आपको आम के रस की जरूरत है तो भी उस रस की रक्षा करने वाले या यों कहिये कि रस पैदा करने के मूल साधन गुठली छेतरा आदि का भी पैसे देकर खरीद लाते हैं। आप आम चूमने पर गुठली तथा छेतरे आदिको फेंक देंगे तोभी उसके लिये पैसे देने ही पड़ते हैं। कई वार आप आमों के साथ करडिया और घास भी लाते हैं। क्यों ? इसलिये कि उनके बिना आप आमों की रक्षा अच्छी तरह नहीं कर सकते। आपका आखिरी कार्य यद्यपि रस चूसना ही है पर रस रक्षा के इतर साधनों को पहले से ही त्याग देने से इष्ट कार्य सफल नहीं हो सकता।

मैं पहले ही कह चुका हु कि प्रत्येक कार्य क्रमसर होता है और होना चाहिये। बिना ऐसा किये काम ठीक नहीं होता। आप लोग आम खाते हैं, शरीर को किस प्रकार पोषण करता है इसकी आपको मालुम नहीं है यदि मालूम हो तो समझ सकते हैं कि क्रम विकाश का नियम कितना मजबुत है।

आप आम आदि पदार्थ शरीर पोषण के लिये खाते हैं। पर खाते ही शरीर का पोषण नहीं हो जाता, क्रम से होता है। जिस आमको आप चुमते हैं, पहले वह आमाशय में जाकर पचता है। पचने पर विशेष प्रकार का रस बनता है। उस रस का उपयोगी भाग रक्त बन जाता है और अनुपयोगी भाग मल मूत्र के रास्ते बाहर निकल आता है। रक्त मोटी तथा छोटी नसों के द्वारा सारे शरीर में फैलता है। रक्त के दो भाग हो जाते हैं। शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध रक्त लाल रंग का होता है

और अशुद्ध काले रंग का। रक्त की और भी कई क्रियाएं होती है। सूक्ष्म से सूक्ष्म पोषण तत्व आखों को मिलता है और स्थुल से स्थुल स्पर्श इन्द्रिय को। रक्त से मांस, मेदा, अस्थि' मज्जा, शुक्र बनते है।

आप लोगों ने शरीर पोषण की मोटी बात समझी इस उदाहरण से आपको आत्मिक तत्व की तरफ ध्यान देना चाहिये। आत्मिक तत्व की चरम सीमा तक पहुचने के लिये आपको पहले दूसरी बातों की भी रक्षा करनी चाहिये, बिना ऐसा किये आप आत्मिक तत्व तक पहुच नहीं सकते।

क्रमसर विकाश करते जाना ही उन्नति का मूल मन्त्र है।

सकडाल ने पहले भगवान को नमस्कार किया था वह व्यवहारिक दृष्टि से किया था अब उसने हृदय के प्रेम से किया और बोला—

इच्छामि ण भन्ते ! तब्भ अन्तिए धम्म निसामेत्तए, तए णं समण भगव महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीवि ओवासगस्स तीसेय जाव धम्मं परिकहेइ।

प्रभो ! मैं धर्म सुनना चाहता हू।

सकडाल ने पहले धर्म सुना था पर सुना था ऊपर के मन से। हृदय के प्रेम से नहीं। जो मनुष्य ऊपर के मन से धर्म सुनता है उसे कोई धर्म समझ में नहीं आता। धर्म तभी समझ में आता है जब हृदय के प्रेम से सुना जाय।

भगवान् महावीर ने सकडाल के प्रार्थना करने पर धर्म देशना और आरभ की। यद्यपि धर्म देशना सकडाल के लिये आरम्भ की, पर इसका मतलब यह नहीं है कि इसी के लिये

की। अन्य लोगों ने भी सुनी और लाभ उठाने का प्रयत्न किया। वर्षा किसी खास के लिये नहीं बरसती उसका उद्देश्य तमाम बनस्पतियों को हरीभरी करने का है वर्षा का लाभ वेही किसान उठा सकते हैं जो उद्योगी होते हैं। आलसी किसान उससे लाभ नहीं उठा सकते। उन आलसियों के लिये वर्षा बरसना न बरसना बराबर है।

प्रभु की वाणि सुनने पर सकडाल की इच्छा भगवान् के पास से १२ व्रत धारण करने की हुई। भगवान ने उसकी इच्छा पूरी की।

वीर प्रभु की वाणि सुनने पर सकडाल को उस प्रकार आनन्द आया जिस प्रकार निर्धन को धन, अपुत्र को पुत्र और रंक को राज्य मिलने से आया करता है।

सकडाल ने भगवान् महावीर के धर्म को धारण कर लिया है ऐसा जान कर उसका पूर्व गुरु गोशालक अपने धर्म पर उसे पुनः आरूढ करने के लिये सकडाल के पास आया।

मित्रों! यहां यह कह देना जरूरी है कि धर्म पर जिस की पूरी आस्ता हो जाती है उसे फिर कोई नहीं डिगा सकता। महावीर के धर्म और गोशालक के धर्म में बड़ा भारी फर्क यह था कि महावीर आत्मा को कर्ता मानते थे और इसी का प्रचार दुनिया में करते थे। पर गोशालक इस सिद्धान्त से बिलकुल भिन्न मत रखता था। वह इस सिद्धान्त का प्रचार करता था कि जो कुछ होता है वह होनहार याने भवितव्यता से होता है। सकडाल पहले इसी सिद्धान्त का मानने वाला था पर उसके हृदय से अब यह भाव मिटकर इस बात पर पूरा दृढ हो गया है कि जो कुछ होता है वह आत्मा के कर्म का ही फल है।

आत्मा को कर्ता धर्ता मानने वाले सिर्फ महावीर ही नहीं पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भी इसीका उपदेश गीता में दिया है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्
आत्मैव आत्मनो बन्धु रात्मैव रिपुरात्मनः।

अर्थात् हे अर्जुन ! अपनी आत्मा से ही अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहिये। आत्मा ही आत्मा का बन्धु और आत्मा ही आत्मा का रिपु है।

आप लोग जान गये होंगे कि महावीर प्रभु और श्रीकृष्ण के उपदेश में कितनी साम्यता है, बिल कुल मिलते जुलते। परन्तु जो होनहार को कर्त्ता मानते हैं तो ऐसी ऐसी बातें आकर सामने खड़ी हो जाती हैं कि उनका वे निराकरण नहीं कर सकते। उदाहरण समझिये कि लडका स्कूल में पढ़ने जाता है। अब उस लड़के का पढ़ाना लिखाना प्रश्नोत्तर करना ये सब क्यों किये जाते हैं ? जहा भवितव्यता का ही सिद्धान्त माना जाता है वहा इन कृत्यों की कोई जरूरत मालूम नहीं पड़ती। क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार लड़का अपने आप पढ़ लिख जायगा। पर हम इससे उलटा होते देखते हैं। मास्टर लड़के को पढ़ाता है तब पढ़ता है और सिखाता है तब सीखता है। इससे यही नतीजा निकलता है कि कर्ता के बिना कर्म होना अशक्य है। मिट्टी में घड़ा बनने की ताकत है पर यदि कुम्हार बनाने का काम न करे तो ? बहनें भवितव्यता पर ही रह कर आटे को चुल्हे के पास रखदे तो रोटी बन सकती है ?

'नहीं।'

अनुमान कीजिये कि यदि चार दिन ही भवितव्यता के सिद्धान्त को मानकर आटे के भरोसे पर रोटी बनाना टाल दे

तो संसार की कैसी स्थिति हो जाय? कैसा हाहाकार मच जाय? इन्हीं सब सिद्धान्तों को पीछे देख कर सकडाल ने महावीर के सिद्धान्त को बड़ी भक्ति पूर्वक स्वीकार किया।

जब गोशालक सकडाल के पास पहुच रहा था तब सकडाल समझ गया कि यह मेरे पूर्व के गुरु मुझे अपना सिद्धान्त फिर मनवाने के लिये आये हैं। सकडाल चुपचाप बैठा रहा, मुह से एक शब्द भी न बोला।

गोशालक कोई मूर्ख तो था ही नहीं, बड़ा बुद्धिमान और विचक्षण था। उसने सकडाल के भावों को ताड़ लिया।

मित्रों! आप जानते हैं कि गोशालक सकडाल का पूर्व गुरु था, फिर वह ऐसा उदासीन क्यों रहा? इस लिये कि गोशालक का सिद्धान्त मेरे लिये और जगत के लिये अकल्याण-कारी है। ऐसे सिद्धान्त वादी के प्रति विनय भक्ति प्रदर्शित करना, उसके सिद्धान्त को मान देना है। इससे बड़े अनर्थ की सम्भावना रहती है। इसी लिये सकडाल ने ऐसा भाव प्रदर्शित किया। इसे कहते हैं 'असहयोग।'

जिस प्रकार धर्म सिद्धान्त के लिये असहयोग करना जरूरी है उसी प्रकार यदि लौकिक नीति पूर्ण व्यवहारों में राज्य की तरफ से अन्याय मिलता हो ऐसी दशा में राज भक्ति युक्त सविनय असहकार करना प्रजा का मुख्य धर्म माना गया है। वह प्रजा नपुंसक है जो अन्याय को चुपचाप सहन कर लेती है और चु तक भी नहीं करती। ऐसी प्रजा अपना ही नाश नहीं करती पर उस राजा का भी नाश का हेतु बन जाती है जिसकी वह प्रजा है। जो प्रजा अपने में इतना बल

नहीं रखती कि उस अन्याय का पूर्ण प्रतिकार कर सके, ऐसे मौके पर नीति विशारद सलाह देते है कि-कम से कम इतना तो जरूर ही राजा तक प्रगट कर दे कि अमुक कानून या कार्य हमारे लिये हित कर नहीं है।

कौरव पाडवों के युद्ध में दुर्योधन की तरफ महा विचक्षण भीष्म और द्रोण आदि थे। वे जानते थे कि दुर्योधन का पक्ष अन्याय का है और युधिष्ठर का न्याय का। ये लोग अन्न दुर्योधन का खाते थे इसलिये उसके विरुद्ध शस्त्र उठाना हेय समझते थे पर फिर भी अपने हृदय के भाव स्पष्ट तया व्यक्त कर देने में नहीं हिचकिचाए।

अन्याय के प्रति अ-सहयोग न करने से बड़ा भारी अनर्थ हो जाता है यह बात मै ऊपर कह चुका हू। पुष्टि के लिये आप महाभारत के युद्ध के ऊपर ही दृष्टि डालिये। भीष्म द्रोण आदि यदि कौरवों से अ-सहयोग कर देते तो इतना बड़ा रक्तपात न होता और इस देश के पतन की नींव न पड़ती। अन्याय के प्रति अ-सहयोग न करने के फल स्वरूप ही रक्त की बड़ी भारी नदी बही और देश का अधःपतन इतना हुआ कि सदियें बीत जाने पर भी सम्हल न सका।

कौन सा काम अन्याय का है और कौनसा न्याय का; किस कानून से प्रजा के कल्याण की सम्भावना है और किस से अ-कल्याण की; यह बात हरेक मनुष्य नहीं समझ सकता। समझदारों का कर्तव्य है कि इस बात का ज्ञान प्रत्येक को करावें। जो इस प्रकार कल्याण का ज्ञान समय समय पर कराते रहते हैं, उन्हें जनता अपना पूज्य नेता मानती है।

जनता ने जिन पुरुषों को नेता या श्रेष्ठ पुरुष मान लिया है उन्हें ऐसा मार्ग अवलम्बन करना तथा अपने आचरण ऐसे रखने चाहिये जो दूसरों के आदर्श रूप हों। क्योंकि लोग नेताओं तथा अगुआओं का ही अनुकरण करना चाहते है । गीता में कहा गया है–

यद्यदा चरति श्रेष्टो तत्तदेवो जनोत्तरः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥

मित्रों ! इतनी लम्बी बात कहने का मेरा मतलब यह था कि वह सकडाल कुम्हार होते हुए भी श्रेष्ठ पुरुषों में गिना जाता था। यदि वह गोशालक के सिद्धान्त के प्रति असहयोग न करता तो दूसरे भोले लोग उस सिद्धान्त के अगाडी सिर झुका देते और अकर्मण्य बन जाते।

जरा आप भी सोचिये, क्या कर्त्ता को भूल जाने से काम सुधर सकते हैं ? सिर्फ होनहार पर ही बैठे रहने से कोई काम बन सकता है ?

मैंने पहले दृष्टान्त दिया था कि बहनें यदि होनहार के भरोसे पर ही रोटी का काम दो–चार दिन के लिये छोड दे तो संसार की क्या स्थिति हो ? पुरुष एक दिन भी होनहार के भरोसे पर रहकर धोती न पहने तो कैसी बीते ? नगा होने पर दोष किसे दिया जाय ? क्यों कि जहां होनहार का सिद्धान्त माना जाता है वहां दूसरे और किसी को तो दोष देही नहीं सकते । लडके पढ़ने जाते हैं फिर उनकी परीक्षा लेकर योग्यतानुसार नम्बर देकर फैल पास क्यों किया जाता है ? क्यों उन्हें उत्तेजना दी जाती है कि 'यदि तुम पास हुए तो इनाम दिया जायगा'। किसान बरसात के दिनों में बरसात

आने पर भी खेती का काम न करे और होनहार के भरोसे पर घर जाकर बैठ जाय और विचार करे कि धान पैदा होना होगा तो अपने आप हो जायगा मैं क्यों सिर पच्ची करूं ? जुलाहा भी उसी सिद्धान्त को मान कर वस्त्र बनाने का काम सूत के ऊपर ही डाल कर बैठ जाय तो ?

श्रावकगण—' काम नहीं चल सकता ।'

इसी लिये इस सिद्धान्त के प्रति सकडाल को असहयोग करना पड़ा कि कहीं इस सिद्धान्त को मान कर जनता होनहार वादी न बन बैठे । उसे महावीर का सिद्धान्त हृदयगम हो गया कि पुरुषार्थ करने से ही कार्य सिद्धि होती है । गीता के अन्दर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही बात कही है

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सगोऽस्त्व कर्मणि ॥

कर्म करो, कर्म फल की आशा मत करो । कर्म फल को ही कर्म करनेका कारण मत बनाओ और निकम्मे भी मत रहो।

मित्रों ! सकडाल ने अन्याय के प्रति असहयोग कर दिख लाया । वह भी सभ्यता के साथ ।

भारत के चारों वर्ण पहले किस प्रकार सभ्यता रखते थे इसका वर्णन जैन शास्त्रों में मिलता है । यह सकडाल जातिका कुम्हार, इसके ५०० दूकानें वर्तन बेचने की, ३ करोड़ सुनवैयों का अधिपति, १०००० गौओं का प्रति पालक, फिर भी नीति पूर्ण व्यवहार का ध्यान कितना रहता था, जरा सोचिये ।

जिस कुम्हार का चरित्र मैं आपको सुनाता हूं उसकी जाति कुम्हार थी और घर का धनी था पर नियमों का कैसा

पालन करता था, और वह भी सभ्यता के साथ। यही कारण है कि भगवान् महावीर भी जिस सभ्यता के साथ एक राजा को उपदेश देते हैं उसी प्रकार एक शूद्र को भी।

भगवान् यह खयाल करते कि यह कुम्हार है इस लिये मैं उपदेश नहीं देता। पर उनके सामने तो सब बराबर थे। यह तो लोगों ने पीछे से ढंग पकड़ा है कि वे नीच और हम ऊंच। हमारी बराबर वे कैसे बैठ सकते हैं।

सकडाल ने भगवान् का उपदेश सुना और निश्चय कर लिया कि कर्ता आत्मा ही है होनहार कुछ चीज नहीं।

आप भाइयों में केवल होनहार को मानने वाले शायद न होंगे पर 'भगवान् करते हैं वह होताहै' मानने वाले बहुत मिल जायेंगे। ये कहते हैं कि 'ईश्वर करता है वही होता है, हमारे किये धरे कुछभी नहीं होता।' इस भ्रमका मिटाने के लिये, उन्हें गीता देखनी चाहिये। उसमें लिखा है:—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥

'परमेश्वर न तो मनुष्य को कर्ता बनाता है, न कर्म की सृष्टि करता है, न कर्म-फलका संयोगही करता है। ये सब स्वभाव से होते रहते हैं।

जैनी भाई भी अन्ध विश्वास से दूर नहीं हैं। वे भी 'काई करां महाराज, कर्मो की गति' कह कर सब दोष कर्म पर डाल देते हैं, मानों स्वयं तो कुछ करने वाले ही नहीं।

मित्रों! यह बात आपको पहले बतला दी गई थी कि सकडाल के विचारों को परिवर्तन करने के लिये गोशालक उसके पास गया। उसने सोचा कि सकडाल मेरा शिष्य था लेकिन अब महावीर का हो गया है। चलू शायद मेरे पूर्व प्रेम

को देख कर या मेरे से प्रभावित हो अपना मत पलट दे और मेरे सिद्धान्त को फिर से मानने लग जाय।

'मित्रों! गोशालक के इस विचार में बड़ा भारी गंभीर विचार है। यद्यपि आज गोशालक दुनियाँ के पर्दे पर नहीं है परन्तु बहुत से धर्मावलम्बी उसी के जैसी मनोवृत्तियों को लेकर आज धर्म प्रचार कर रहे है। पर याद रखना चाहिये कि इस प्रकार से धर्म प्रचार करना यह बतलाता है कि उस धर्म में सत्य की मात्रा बहुत कम है। जहा सत्य नहीं होता वहीं इस प्रकार की दुर्बलता हुआ करती है। सत्य को मानने वाला कभी इस मार्ग का अनुसरण नहीं करता कि 'मैं किसी को कुछ लालच देकर या किसी को अपनी सूरत से प्रभावित कर अपने मत का अनुयायी बना लू'। कोई माने या न माने जिसको उसने सत्य समझ लिया है, निष्काम हो कर उसी का प्रचार बिना किसी लगावट के करता रहता है। जिसकी इच्छा हो माने न माने पर अपनी तरफ से किसी भी प्रकार के बल का प्रयोग नहीं करता।

सकडाल, गोशालक को देख कर न तो प्रभावित हुआ और न पहले जैसा आदर सत्कार किया, केवल मौनावलम्बी बन गया।

गोशालक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी मुख मुद्रा देख कर समझ गया कि महावीर के उपदेश का इस पर गहरा असर पड़ा है। कोई बड़ी बात नहीं, क्योंकि महावीर हरेक बात इस ढग से समझाते थे कि कोई दिशा खाली नहीं रहती। पहले सकडाल मुझे देख कर खड़ा हो जाता और बड़ी स्वागत करता पर आज स्थिर भाव से बैठा है, इस से मालूम होता है कि यह महावीर के उपदेश से सन्तुष्ट हो गया है।

मित्रों को यहां पर शका हो सकती है कि 'पूर्व गुरु के प्रति सकडाल को ऐसा अविनय का भाव प्रदर्शित न करना चाहिये था, चाहे कुछ भी हो—उसके सिद्धान्त से मत भेद हो गया हो तो भी घर आये अभ्यागत के नाते मे भी उसका कुछ न कुछ आदर सत्कार करना चाहिये था।'

इसका समाधान यह है कि गोशालक सकडाल के पास अतिथि या अभ्यागत के रूप में नहीं आया था। यदि उस रूप में आता तो सकडाल उसका जरूर सत्कार करता, पर वह इसलिये आया था कि मैं अपना सिद्धान्त उस से मनवा लूगा। सकडाल ऐसे अवसर पर उसका आदर करता तो उस अपूर्ण सिद्धान्तवादी का आदर होता जो ससार के अन्दर असत्य का प्रचार करता था। लोग इस आदर को देखकर भ्रम में पड़ जाते और यह भी सभव था कि अपने सत्य सिद्धान्त से च्युत हो जाते। गोशालक की आत्मा को उस असत्य सिद्धान्त के प्रति आदर भाव दिखला कर क्लेश में डालना मेरा कर्तव्य नहीं है। इसी बात को ध्यान में रख कर सकडाल ने गोशालक का आदर नहीं किया।

गोशालक, सकडाल के भाव को ताड़ कर विचार करता है कि मैं चला कर इसके पास आया हू। मैं जिस कार्य के लिये आया था वह तो सिद्ध नहीं हुआ, खाली लौटना ठीक नहीं, खाली लौटने से मेरे भक्तों का मेरे प्रति कुछ भाव बदल जाना कोई मुश्किल नहीं है इस लिये कुछ न कुछ इससे सन्मान लेकर जाना ठीक है। और तो इसके पास से मैं क्या ले सकता हु, हा पीठ (पाट) फलक (बाजोट) सज्जा (मकान) सथारा (घास

का बिछौना) प्रचुर है, इन्हें लेकर अपनी मुराद पूरी करूं। वैसे तो यह शायद देगा नहीं, महावीर के गुण ग्राम करने से अवश्य दे देगा। महावीर के गुण ग्राम करने चाहिये।

यहां शंका उत्पन्न हो सकती है कि गोशालक लाखों मनुष्यों का पूज्य था। उसे पीठ, फलक आदि और जगह में भी प्राप्त हो सकते थे, फिर अपने प्रति द्वेषी महावीर की तारीफ कर इनके लेने की जिज्ञासा प्रगट की, इसका क्या मतलब?

मित्रों! इसका वास्तविक रहस्य क्या है, यह तो पूर्ण ज्ञानी ही जान सकते हैं, पर छद्मस्थ को जो विचार आये हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) गोशालक ने विचार किया होगा कि सकडाल एक बड़ा आदमी है, यदि इस के यहां से अनादर हो गया तो मेरे दूसरे भक्तों पर भी इसका असर पड़े बिना न रहेगा। इसके घर में मेरा आदर होता रहेगा तो लोग समझेंगे कि सकडाल मेरा (गोशालक का) भी अनुरागी है।

मित्रों! यह बात संसार व्यवहार में भी देखी जाती है कि जिन दो मनुष्यों में कुछ मनो मालिन्य होने के कारण एक दूसरे के घर नहीं जा-आ सकते, सहसा किसी कारण से मनो मालिन्य दूर न होने पर भी घर पर आना-जाना हो जाय तो लोग यही समझेंगे कि इनमें पूरा सद्भाव नहीं तो आधा जरूर हो गया है। यही बात यहां समझनी चाहिये।

(२) गोशालक ने शायद यह भी सोचा हो कि इस के घर आना जाना रहने से कभी न कभी शायद विचार परिवर्तन करा सकूं।

(३) मुझे, यदि यह पीठ, फलक आदि देदेगा और लोग देखेंगे तो समझेंगे कि यह महावीर को और मुझे (गोशालक को) बराबर मानता है। याने मैं हू वही महावीर हैं, और महावीर हैं वही मैं हू।

गोशालक सकडाल से अपनी इच्छा पूर्ति के लिये गुप्त भाषा में कहता है--

आगए णं देवाणुप्पिया ! इह महामाहणे ?

देवाणु प्रिय ! सकडाल ! यहा महामहाण आये थे ?

सकडाल यद्यपि गोशालक को पूज्य दृष्टि से इस समय नहीं देखता था फिर भी मीठे शब्दों में बोलता है—

केण देवाणुप्पिया ! महामाहणे ?

देखा आपने, कैसे मीठे वचन हैं ? अहकार का नाम नहीं। यह जानता था कि मेरा मत भेद इसके सिद्धान्त से है, मैं इसके सिद्धान्त को मान न दू यह मेरा कर्तव्य है पर यह कहा की बात कि सभ्यता से बात न करू ? मेरा अनुभव है कि बहुत से भाई जो अपने को नहीं मानते उन्हें जली कटी सुनाते हैं, पर याद रखिये यह आचरण सभ्यता में नहीं गिना जाता।

बोलना तो यह है—

देवाणुप्रिय ! आप महामहाण किस को कहते हैं ?

गोशालक समझ गया कि यह तो मेरे मुह से साफ तौर पर कहलाना चाहता है।

बोला--

समणे भगव महावीरे महामाहणे उप्पन्नणाण दसणधरे जाव महियपूइए जाव तच कम्मसम्पयासम्पउत्ते ।

अर्थात्–मैं श्रमण भगवान् महावीर के लिये कहता हूं।

श्रमण उसे कहते है जो चचल संसार से अपनी आत्मा को निकाल कर परमात्मा बनने के लिये परिश्रम करता है।

भगवान् उसे कहते है जो सब प्रकार से ऐश्वर्यवान् हो, ज्ञान का भंडार हो, आत्मा के धन से धनी हो।

महावीर उसे कहते है जिसने कर्म रूपी शत्रुओं का नाश कर विजय प्राप्त कर ली हो।

जिज्ञासु प्रश्न कर सकता है कि इन तीन विशेषणों के देने से गोशालक का क्या अभिप्राय था ?

उत्तर यह है कि एक नाम के कई व्यक्ति होते हैं। किस का नाम लिया गया यह पूरी मालूम नहीं पडती; लेकिन जाति विशेष, गोत्र विशेष या पदवी विशेष साथ बोलने से उस व्यक्ति का स्पष्ट बोध हो जाता है, यही बात यहां समझनी चाहिये। इन तीनों विशेषणों के देने से सकडाल समझ गया कि 'महा महाण' कहने का अभिप्राय सिद्धार्थपुत्र त्रिशलानन्दन से ही है।

गोशालक, प्रभु महावीर के साथ शिष्य रूपसे ६ वर्ष तक रहा था। महावीर ही के प्रताप मे गोशालक के प्राण एक बार बचे थे। महावीर के प्रताप को यह अच्छी तरह जानता था इसी लिये इस ने इतनी बात जानकार के रूप में कही।

गोशालक के प्राण किस कारण से जाते थे और महावीर प्रभु के द्वारा इस के प्राण कैसे बचे इसकी कथा थोड़े में यों है।

वैशम्पायन नाम के एक बाल तपस्वी थे। वे सूर्य की आतापना लेकर तपस्या करते थे और प्रकृति के बडे दयालु थे। एक दिन महावीर प्रभु और गोशालक आगे पीछे कहीं जा रहे

थे; रास्ते में गोशालक ने इन तपस्वी को आतापना लेते देखा। इन के शरीर में जूए पड गई थीं, वे सूर्य की गरमी से नीचे गिर रही थीं। तपस्वी करुणार्द्र हो कर उन्हें उठा २ कर वापस यथा स्थान रख देते थे। गोशालक को वडी हंसी आई और उपहास रूप में वोला–इस तपस्या से और तो कुछ भी नहीं हुआ, तेरा शरीर जूओं का घर जरूर वन गया।

आत्मा का तिरस्कार बुरा होता है, लेकिन वैशम्पायन ने मूर्ख समझ कर छोड दिया। गोशालक ने दुबारा और कहा, तब भी तपस्वी शांत रहे। पर जब तीसरी वार कहा तब तपस्वी का क्रोध न रुका सिद्धियें तो उनको कई प्राप्त हो चुकी थीं। विचार किया इस दुष्ट को कुछ चमत्कार दिखाना चाहिये। उन्हों ने तेजु लेश्या प्रगट की, आखों में से एक तेज अग्नि की किरण निकली। गोशालक राख का ढेर वन जाता पर महावीर को मालूम होते ही उस पर दया लाकर उसे शांत कर दी। वैशम्पायन चकराया मेरी लेश्या किसने रोक दी। इधर उधर दृष्टि फेंकने से प्रभु महावीर दिखाई पडे। इन्हें अर्हत जान कर शर्मिंदा हो गया। गोशालक के हृदय में विचार आया–ओह, महावीर में इसी लेश्या का प्रताप है। मै भी इसे प्रगट करू और चमत्कार दिखलाऊ।

लोग यहा पर कहा करते है कि–महावीर ने गोशालक की दया कर वडा पाप कमाया। यदि वह मर जाता तो इतना मिथ्यात्व न फैलने पाता।

मित्रों! यदि पाप लगने का काम होता तो महावीर चार ज्ञान के धनी होने के कारण उसे जान कर कभी न करते। पर

ऐसा नहीं था। जो भाई महावीर के सिर पाप मंढते हैं, उनकी बुद्धि पर दया आती है। वे अभी ज्ञानियों के मर्म को नहीं समझ पाये। वे नहीं जानते कि प्रतिस्पर्धी खड़ा करने में महा पुरुषों का क्या मतलब होता है। याद रखिये, जब एक शक्ति को दूसरी शक्ति रोकने का प्रयत्न करती है तब उस शक्ति का पूरा निश्चय हो जाता है। पहलवान यह नहीं चाहता कि मेरे सामने कोई पहलवान न आवे तो मेरा नाम बढ़ेगा। पंडित नहीं चाहता कि मैं अकेला ही पंडित बना रहूं। ये लोग यही चाहते हैं कि हमारा प्रतिपक्षी हमारे सामने आवे तो हमें अपना बल दिखाने का मौका मिले। जो कच्चे पहलवान या पंडित होते है, उनकी बात जुदी है। वे यही चाहते हैं कि हमारा प्रति द्वंदी कोई खड़ा न हो तो अच्छा है, नहीं तो हमारी पोल खुल जायगी। महावीर कच्चे सिद्धान्त के प्रचारक नहीं थे। इसी लिये उन्हें इस बात में हर्ष था कि प्रति द्वंदी खड़े हों और मेरे सिद्धान्त की कसोटी दुनिया के सामने रखदे। गोशालक की दया करने में उनका एक यह भी तत्त्व होगा, ऐसा अनुमान होता है।

कई भाई कहा करते है कि 'जैनियों की दया ने देश का सर्वनाश कर दिया।' समझ में नहीं आता लोग यह अपवाद जैन धर्म पर कैसे रखते हैं? किसी सिद्धान्त को बिना समझे उस के अनुयायियों के ऊपर के व्यवहार को देख कर कुछ का कुछ अपवाद कर बैठना गलती है। वे कहते हैं–'जैनियों की दया कायरता सिखलाती है, जैन धर्म कायरों का धर्म है।' इन भाइयों का समझ लेना चाहिये कि महावीर की दया कायरों की नहीं है, यह वीरों की है। जड़ वादियों को दया का महात्म्य

समझ में नहीं आ सकता। वे व्यर्थ की हिंसा करने में ही
वल समझते हैं। इसी लिये आज संसार में चारों तरफ
यों की बातें चलती हैं और हाहाकार मच रहा है। हृदय
दि सच्ची दया प्रगट हो जाय तो निर्वैर के प्रताप से संसार
हुत जल्दी शांति फैल सकती है। महावीर के दृष्टान्त से
मझा जा सकता है कि वे जहा जाते थे, सो कोस की परिधि के
न्दर रहने वाले सब प्राणी निर्वैर बन जाते थे। यह उनकी
सच्ची दया का ही प्रताप था।

बैठे ठाले कोई भी समझदार पुरुष लड़ाई करना पसन्द नहीं करता। आप श्रीकृष्ण की तरफ का ही दृष्टान्त लीजिये, वो पाण्डवों की तरफ से कौरवों के पास जाकर सिर्फ पांच गांव लेकर ही संधि करने को तैयार हो गये थे। ऐसा क्यों किया गया? क्या श्रीकृष्ण कायर थे? शांति रखना ही यदि कायरता हो तो श्रीकृष्ण को भी कायर कहना चाहिये। पर नहीं, लोगों को जैन की अहिंसा में ही कायरता मालूम पड़ती है यह बड़े आश्चर्य की बात है। क्या वेदों में अहिंसा नहीं है? क्या गीता अहिंसा का उपदेश नहीं देती? क्या पुराणों में दया का महात्म्य वर्णन नहीं किया गया? और तो क्या, लोग कुरान को, खूनी शिक्षा देने वाली पुस्तक समझते हैं। उसमें लिखा है—

जिसका खुदा दयालु हो, उसके भक्त को क्या दयालु न बनना चाहिये? जो स्वयं दयालु नहीं बनता उसे क्या हक है कि वह दूसरों के पास दया की याचना करें।

गीता के अन्दर—

अद्वेष्टा सर्वभूताना मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुखःक्षमी॥

लिखा है।

जब दया कायरता ही सिखलाती है तब यह उपदेश क्यों दिया गया ?

लोक कहते हैं–दूसरे धर्मों में अहिंसा का उपदेश तो है पर साथ में वीरता के भी बहुत से उदाहरण मिलते हैं।

क्या जैन में नहीं मिलते ? उदई राजा के यहां से चड प्रद्योतन राजा दासी उड़ा ले गया। जब मालूम पड़ी तो उसे कहला भेजा कि या तो दासी को ले गये वैसे चुप चाप भेज दो, नहीं तो लड़ाई ठनेगी।

दूसरा उदाहरण–कोणिक ने हार हाथी ले लिये। चेड़ा ने कहला भेजा कि जैसे तुम दस भाई हो वैसे ही वहिलकुमार भी ११ वां भाई है। इसका भी हिस्सा होना चाहिये। कोणिक ने न माना। चेडा उसका पक्ष लेकर केवल न्याय रक्षा की बुद्धि से युद्ध में आ धमका।

जो भाई जैन की अहिंसा को कायरों की कहते हैं उनको इन उदाहरणों पर ध्यान दे कर अपना मत सचाई से स्थिर कर लेना चाहिये।

* * * * *

मित्रों ! 'आप महामहाण किसे कहते हैं, इस प्रश्न के उत्तर में गोशालक ने महावीर का नाम बतला दिया तब भी सकडाल चुप रहा। गोशालक बडा दक्ष था। दक्ष पुरुष अपने कार्य की सिद्धी के लिये जब तक सफलता प्राप्त नहीं हो जाती तब तक चुप हो कर नहीं बैठते। सकडाल को चुप देख कर गोशालक ने फिर पूछा—

' आगए णं देवाणुप्पिया ! इह महागोवे ? '

' हे देवाणुप्रिय ! क्या यहा महागोप पधारे थे ? '

भाइयों, आप लोग शायद ' महागोप ' का अर्थ नहीं समझते होंगे। गोप उसे कहते हैं जो गौओं की भले प्रकार रखा करे। उन गोपों में भी जो अग्रेसर-मुखिया, उसे महागोप कहते हैं।

आज कल ' गोप ' जिस दृष्टि से देखा जाता है पहले ऐसा नहीं था। गोप पूर्व जमाने में ऊंची दृष्टि से देखा जाता था, इसी कारण महा पुरुषों को भी इसकी पदवी दी जाती थी। महापुरुषों को वही पदवी दी जाती है जो उच्च गिनी जाती है। कनिष्ठ पदवी महापुरुषों को कोई नहीं देता। गोपका काम नीच गिना जाता तो श्रीकृष्ण महाराज खुशी से इस पदवी को धारण न करते। श्रीकृष्ण ने इस को धारण कर इसका महात्म्य दुनिया में और बढा दिया।

गोशालक ने जब ' महागोप पधारे थे ?' यह प्रश्न किया तब सकडाल ने पूछा—

' केण देवाणुपिया ! महागोवे ? '

' देवाणुप्रिय ! आप महागोप किसे कहते हैं ? '

गोशालक-' समणे भगव महावीरे महागोवे। '

' श्रमण भगवान् महावीर को कहता हू। '

सकडाल-से केणट्ठेण देवाणुप्पिया ! जाव महागोवे ?

सो किस प्रकार ?

गोशालक—एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगव मह[illegible] ... खजमाणे [illegible]

... बहवे जीवे तस्साणे विणस्स माणे ...

माणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे धम्ममएण दण्डेणं सार क्खमाणे सगोवेमाणे निव्वाण महावाड साहितथ सम्पावेति।

*   *   *   *   *

गोप जंगल में गौओं को ले जाता है। उनके ऊपर किसी प्रकार का भय उपस्थित होना जान पड़ता है तो गोप उन्हें बचाने की कोशीश करता है। गौओं के साथ यदि गोप रक्षक न हो तो उनकी रक्षा होनी मुश्किल हो जातीहै। गौए जब चलती चलती खतरे के मार्ग की तरफ जाने लगती हैं तो गोप फौरन उनको ठीक रास्ते पर ले आता है। गौओं के बचाने के लिये गोप महा संकट का सामना करने से नहीं चूकता। मौका आ जाय तो प्राणों की भी बाजी लगा देता है। गोपों ने गौओं की रक्षा करने में किन २ आपत्तियों का सामना किया इस इतिहास को जानने के लिये महाभारत, भागवत, पुराण या जैन शास्त्रों में जहां इनका वर्णन चला है, वहा देखना चाहिये। जिस प्रकार मृग के ऊपर सिंह हमला करता है, दुष्ट पुरुष उसी प्रकार गौओं के पीछे भी पड़ते हैं, लेकिन अगर गोप साथ होता है तो उन की रक्षा कर लेता है। गौओं को कोई तलवार से मारता है, कोई भाले से भेदन करता है, कोई खजर से प्राण हरण करता है, इनसे रक्षा करने वाले को गोप कहते है। पर जो इससे भी ऊंचे प्रकार की रक्षा करे उसे कहते है—' महागोप '।

मित्रों! सासारिक महागोप का अर्थ तो आप समझ गये होंगे अब जरा महावीर को महागोप की पदवी किस प्रकार दी गई यह भी समझ लीजिये। महावीर को जो महागोप की पदवी दी गई है वह इससे भी ऊंची है। गोप सिर्फ गौओं की रक्षा करता

है परन्तु महावीर 'गो' याने इन्द्रियों के समूह को रखने वाले सब की रक्षा करते है। गोप जगल में घूमती हुई गौ को कुमार्ग में जाने म रोकता है, महावीर चतुर्विध गति रूप जगल में भटकते जीव को अन्याय पथ से बचाते हैं।

कोई पूछ सकता है कि-'यहा गौ की उपमा क्यों दी गई?' इसका मतलब यह है कि गौ बने बिना अपनी रक्षा नहीं हो सकती। आप जानते हैं कि गौ जब गोप का स्वामी पना स्वीकार करती है तब उस की रक्षा का भार गोप अपने ऊपर समझ लेता है। अपन सब गौएं बन कर महावीर प्रभु के स्वामी पने के नीचे आजायेंगे तभी वे हमारी रक्षा कर सकेंगे। सासारिक गोप को गौओं की रक्षा करने से कुछ न कुछ लाभ होता ही है पर महावीर एक ऐसे गोप है जो अपने स्वार्थ के लिये कुछ भी नहीं लेते।

हमारी आत्मा ने नाना योनियों के अन्दर घूम कर कई वार जन्म मरण के दुःख उठाये है। किसी ने हमको मारा, किसी ने काटा, किसी ने भेदन किया, किसी ने नाथा, इस प्रकार के कई दुःख हम उठा चुके हैं। अब हमें महावीर को अपना रक्षक बनाना चाहिये। गोप अपने हाथ में डडा, मारने के लिये नहीं पर रक्षा करने के लिये लेता है।

उसी प्रकार महावीर ने धर्म रूपी डड अपने हाथ में लिया है। गोप अपने रक्षितों को वाडे में डालकर हिंसक पशुओं की रक्षा से निश्चिन्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रभु हमको निर्वाणरूपी वाडे में डालकर निश्चिन्त हो जाते हैं, जहा किसी प्रकार का दुःख नहीं होता। जन्म मरण के दुःख यहीं छूट जाते हैं। निर्वाण प्राप्त पुरुष को इन कष्टों का सामना नहीं करना पडता।

हे मकाडाल ! इसी लिये महावीर, महागोप है, ऐसा गोशालक ने कहा।

मित्रों ! आपने उपमा उपनेय सुनलिया कुछ चर्चा की बात भी सुन लीजिये—

एक आदमी कहता है—गौओं की छिद्य भिद्य आदि से बचाने में जब पुण्य है तब साधु क्यों नहीं बचाते ? वे बैठ क्यों रहते है ? साधु रक्षा नहीं करते इस लिये मानना चाहिये कि रक्षा करने में पुण्य नही, पाप है।

इसका समाधान शायद आप नहीं कर सकते इस लिये एक दृष्टान्त समझ लीजिये फिर आपके लिये सहज हो जायगा। एक आदमी अपने पास विशेष धन न होने के कारण टके पैसों का व्यापार करता है दूसरा आदमी रत्नों का। क्या टके पैसों के व्यापार में फायदा नहीं है ?

'है।'

अब कोई उस जौहरी से कहे कि 'आप टके पैसों का व्यापार क्यों नहीं करते ?' वह कहता है—'मैं यदि टके पैसों का व्यापार करता हु तो मेरे रत्नों की कीमत मारी जाती है, इस लिये नहीं करता। जौहरी टके पैसों का व्यापार नहीं करता, क्या इस लिये यह समझना चाहिये कि टके पैसों के व्यापार में फायदा है ही नहीं ?

'नहीं।'

फायदा जरूर है पर जितने समय में वह जौहरी रत्नों से धन पैदा कर सकता है उतना टके पैसों के व्यापार से नहीं कर सकता, इसलिये वह उसे नहीं करता।

यही बात धर्म में भी समझनी चाहिये। जिस मनुष्य ने महाव्रत् धारण किये हैं, उसे आप रत्नों का व्यापारी समझिये और अन्य धार्मिक काम करने वालों को टके पैसों के व्यापारी। जितने समय में अन्य धार्मिक काम करने में मनुष्य पुण्य संचय करता है उस से अधिक वह उन व्रतों के द्वारा करता है। छोटे २ काम करने से महाव्रत धारी के लिये कई विघ्न आ सकते हैं इस लिये उन को नहीं करता। इसका यह मतलब नहीं कि छोटा काम करना ही नहीं चाहिये। याद रखिये छोटे काम किये बिना बड़े २ काम अधुरे रह जाते हैं, छोटे कामों के ऊपर ही बड़े कामों का आधार है।

छठे आरे में श्रावक नहीं रहेंगे इस लिये साधू भी नहीं रहेंगे, इसका मतलब यही कि छोटे काम करने वाले नहीं तब बड़े काम करने वाले कैसे पैदा हो सकते हैं? गौ की रक्षा करने में पुण्य है और महाव्रत पालने में भी पुण्य है। जो गौ की रक्षा करने में पाप मानता है उसके खुद के ही पाप उदय होगये हैं इस लिये ऐसा कहता है, यों मानना चाहिये।

जो भाई यह कहता है कि गौ की रक्षा करेंगे तब वह हरा घास खायगी, पानी पीवेगी, सन्तान पैदा करेगी, फिर उनकी भी रक्षा करनी होगी तब कितना पाप बढ़ जायगा?

जो भाई ऐसा कहते हैं, उन्हें पूछना चाहिये-तब तो महावीर को भी पाप का भागी होना पड़ता होगा क्योंकि वे उपदेश देते हैं। सब प्राणी एक साथ तो मोक्ष में जाते ही नहीं, कोई स्वर्ग में भी जाता होगा, वहा उसे विलास की सामग्री भी मिलती होगी, वहा से चव कर वह १० वस्तुओं की जोगवाई में भी जन्म

लेता होगा, उसे धन मिलता है, खेत मिलता है, दास दासी मिलते हैं, ऊंच कुल में भी जन्म लेता है, उनको वह भोगता भी है, बतलाइये ये पाप किसे लगते होंगे ? क्या महावीर को ? कदापि नहीं।

सकडाल महागोप की व्याख्या सुन कर भी चुप रहा तब गोशालक फिर बोला—

'आगएण देवाणुप्पिया ! इहं महा सत्थवाहे ?'

देवताओं के प्रिय ! क्या यहां महा सार्थवाही आये थे ?

'के णं देवाणुपिया ! महासत्थ वाहे ?'

'आप महासार्थवाही किसे कहते हैं ?' सकडाल ने प्रश्न किया।

'सद्दालपुत्ता ! समणे भगव महावीरे महासत्थ वाहे।'

'श्रमण भगवान महावीर को।' गोशालक ने उत्तर दिया।

'से केणट्ठेण महासत्थवाहे ?'

'कैसे ?' सकडाल ने पूछा।

गोशालक—'एव खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगव महावीरे समाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे जाव विलुप्प माणे धम्ममएण पन्थेणं सारक्खमाणे निव्वाण महापट्टणाभिमुहे साहत्थि सम्पावेइ। से तेणठ्ठेण सद्दालपुत्ता एव वुचइ समणे भगव महावीरे महासत्थवाहे।

* * * * *

मित्रों ! आप जानते हैं कि आज पाश्चात्य लोग धन कमाने के लिये कितने कटिबद्ध है। एक अंग्रेज कवि ने तो यहां तक कहा है कि 'यदि हम को यह मालूम पड जाय कि सूर्य और चन्द्रमा के

पास सुवर्ण है, तो हम उनसे भी लड़ाई करने से न चूकें और सुवर्ण हरण करलें।' इन लोगों की लालसा कितनी बढी हुई है! भारतीय लोगों की तो इतनी भयकर लालसा कभी नहीं हुई। यद्यपि भारतीय धन कमाना जीवन यापन का मुख्य साधन मानते थे पर उस के पीछे न पड़ते थे। वे धर्म अर्थ काम और मोक्ष के साथ अर्थ को मिलाते थे। अन्याय से अपनी ही जेबें भरते रहें इस इच्छा से कभी धन न कमाते थे। जब कोई बड़ा आदमी धन कमाने विदेश जाता था तब गाव में ढिंढोरा पिटा दिया जाता था कि–' मैं विदेश जाता हू, जिन्हें धन कमाने की इच्छा हो वे मेरे साथ चलने को तैयार हो जाय। मैं उनके खाने पीने पहनने ओढ़ने आदि तमाम बातों का प्रबन्ध करूगा, जो खर्च करने में अ–समर्थ होंगे उन की अपने धन से सहायता करूगा।'

मित्रों! यह बात मैं अपने मुह की नहीं कहता। शास्त्र में इसका उल्लेख मिलता है। सूत्र में तो यहा तक लिखा गया है कि जिसके जूता न होता था उसका प्रबन्ध भी वही सेठ कर देता था। ये सहायक सेठ उनके पास से कुछ भी न लेते थे। वे साफ कह देते थे कि तुम्हारे मार्ग का खर्च मेरे ऊपर है। विदेश में तुम लोग जो कुछ धन कमाओगे उसमें मेरा कुछ भी हिस्सा नहीं है। वह सब तुम्हारा होगा। जो सेठ इस प्रकार लोगों की सहायता किया करता था वह सार्थवाही कहा जाता था।

यह सार्थवाही इसी जन्म का सार्थवाही होता था और वह भी किसी एक नगर तक पहुचाने वाला। पर महावीर प्रभु

अनेक जन्मों का सार्थवाही है और आखिर मोक्ष नगर तक अपने हाथ से पहुंचानेवाला बनता है इसीलिये इन्हें महासार्थवाही की पदवी दी गई है। गोशालक ने यही बात सकडाल से कही।

सार्थवाही शब्द का अर्थ साथ ले चलने वाला होता है। जो अपने साथियों को साथ ले चले, मार्ग में किसी प्रकार की बाधा उन्हें न आने दे, उसे सार्थवाही कहते हैं। सार्थवाही अपने साथियों के साथ अटवी में प्रवेश करता है। अटवी महा भयकर सिंह व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं से परिव्याप्त, गहन झाड़ियों से पूर्ण, जिसके अन्दर बड़े २ उन्नत मस्तक पर्वत, टेढे सीधे अनेक प्रकार के मार्ग होते हैं, ऐसे कठिन पथ से सार्थवाही अपने साथियों को निर्विघ्नता पूर्वक निकाल देता है। सार्थवाही के बिना वह पथिक इस दुर्भ्रान्त पथवाली अटवी को देखकर थर्रा उठता है, एक कदम आगे रखने का भी साहस नहीं कर सकता।

मित्रों! यह उस अटवी का थोड़ासा परिचय दिया गया है जिसे हम आखों से देख सकते हैं। अब जरा आध्यात्मिक विषय की ओर दृष्टि डालिये।

विचार कीजिये—सार्थवाही शब्द से जिस मनुष्य का बोध होता है उसमें और उसके साथ रहने वाले पथिक में बाहिरी दृष्टि से कोई भेद नहीं दिखाई देता। वह भी मनुष्य है और यह भी। इसके दो आखें हैं और उसके भी। इसके दो कान है और उस के भी। हाथ पैर इसके है और उसके भी। हाथ से यह भी खाता है वह भी। कहने का तात्पर्य यह है कि —

के हैं और जिन २ अगों से जो २ काम यह लेता है वे सब अग उसके भी हैं और उन्हीं अगों से वह भी इसी के जैसे काम ले सकता है। इसी बाहिरी दृष्टि को सामने रख कर नास्तिक कहा करते हैं कि सब मनुष्य बराबर हैं, भेद कुछ भी नहीं। पर आस्तिक इस बातको स्वीकार नहीं करता। वह कहताहै कि बाहरी अगों की समानता होने पर भी इनमें बडी भारी असामान्यता रहती है। आप इतिहासों के पन्ने उलटिये आपको पता लग जायगा कि जो जो महापुरुष नेता, प्रमुख आदि हुए हैं उनमें आत्मिक विकाश कितना जबरदस्त था। लाखों मनुष्यों की बालबुद्धि एक तरफ और उनकी एक तरफ। इसे ही कहते हैं सार्थवाही। सार्थवाही के प्रताप से उस पथिक को वह भयंकर अटवी भी नन्दन वन जैसी सम्पन्न मालूम देती है। जो सार्थवाही होना चाहता है उसमें पहले आत्म विकाश होना बहुत जरूरी है। आत्म विकाश बिना कोई सार्थवाही नहीं बन सकता। जिस पथिक के साथ सार्थ-वाही नहीं होता वह उस अटवी में कदाचित् प्रवेश करे तो भी भटक जाता है, उसे कहीं रास्ता हाथ नहीं लगता कई रास्ते देख कर वह चक्करमें पड़ जाता है। हिंसक पशुओं को देख कर वह भयाक्रान्त हो जाता है और चौरादि को देख कर विह्वल हो उठता है। परन्तु जिनके साथ सार्थ-वाही होता है उनको इन कठिनाइयों का तनिक भी अनुभव नहीं होने पाता। एक बचाभी सुगमता के साथ उस अटवी को पार कर सकता है।

सार्थवाही और साधारण मनुष्य में, सूर्य और दीपक जितना अन्तर होता है। सूर्य अपने प्रकाश से सारे लोक को

आलोकित कर देता है, दीपक हजारों होने पर भी अधकार का सम्पूर्ण नाश नहीं कर सकते।

मित्रों! सोचिये संसार अटवी कितनी भयकर है। जन्म मरण से यह अटवी भरी पड़ी है। राग शोक सन्ताप आदि हिंसक पशुओं की इस में बाहुल्यता है। इस में विचरने वाले पथिकों (मनुष्यों) को अनेक प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं। अपन भी इन्हीं पथिकों में से हैं। क्या अपने को इन दुःखों से मुक्त होना है? यदि होना है तो किस प्रकार, इसका विचार करना बहुत जरूरी है।

मित्रों! विचार बड़ा गभीर है। जब कोई तलवार से मारता है तो मनुष्य समझता है कि तलवार मुझे मार रही है। पर यह विचार गलत है। तलवार मारने में किसी हद तक सहायक जरूर है पर दूसरी शक्ति की सहायता के बिना यह किसी को नहीं मार सकती। जब कोई किसी को तलवार से मारने के लिये उद्यत होता है, उसका सार्थवाही, उस दुष्ट मनुष्य के हाथ से तलवार छीन लेता है और अपने साथी की रक्षा करता है। बा मनुष्य अपने सार्थवाही के गुणगान करने लगता है और आभा मानता है। पर यह रक्षा केवल एक समयकी हुई। हम ससार रूपी म भयकर अटवी में भ्रमण कर रहे हैं, इसमें इस से भी भयंकर घा हमारे ऊपर आते रहते हैं, हम किसे सार्थवाही बनावें? इ अटवी में साधारण सार्थवाही काम नहीं दे सकता, इसमें महा सार्थवाही की जरूरत होती है। वह महा सार्थवाही कौन है

'श्री महावीर प्रभु।'

श्री महावीर प्रभु को यदि हम अपना सार्थवाही बनावें

यह हमारे ऊपर घात करने वाले के हाथ से तलवार ही नहीं छीन लेगा पर तलवार उठाने के कारण को ही नष्ट कर देगा। हमारे अन्दर जब कोई घातक प्रकृति काम करती है तभी हमारे ऊपर कोई घात कर सकता है। जब हमारे अन्दर इस प्रकृति का नाम ही नहीं तब किसी की ताकत नहीं कि हम पर कोई घात कर सके। आप बिजली के पावर से परिचित है, आप जानते हैं जब मनुष्य लकडी पर खड़ा होता है तब बिजली उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकती पर पृथ्वी पर रहने से कर सकती है, यह क्यों? इसलिये कि लकड़ी में बिजली का पावर नहीं होता और पृथ्वी में होता है। यह जड़ ज्ञान हुआ। चेतन ज्ञान करना जरूरी है। सब जानते है कि तलवार काट सकती है, अग्नि जला सकती है, विष मार सकता है, फिर बतलाइये सीता को अग्नि ने क्यों नहीं जलाया और मीरा बाई के ऊपर विष ने असर क्यों नहीं किया? इस का मतलब यह था कि उनकी आत्माओं में दुष्परिणाम नहीं था। जिसकी आत्मा में दुष्परिणाम नहीं होता उसका कोई कुछ नहीं कर सकता। मित्रों! यदि आप अपने में ऐसी शक्ति प्रगट करना चाहते है तो महावीर को अपना सार्थवाही बनाइये। इनको सार्थवाही बनाने मे अनेक जन्म के चक्कर काटना मिट जायगा।

आप में से कोई प्रश्न करे कि-जिस की आत्मा में दुष्परि-णाम नहीं होते उसके ऊपर अग्नि विष आदि असर नहीं कर सकते, तब गजसुकुमालजी क्यों जले? खदक मुनि की खाल क्यों उतारी गई? ५०० मुनि घानी में कैसे पिले गये? क्या इन में धर्म तत्व नहीं था? क्या इन्हों ने दुष्परिणामों का नाश नहीं

किया था, फिर ये क्यों जले, क्यों खाल उतरी और घाणी में पीले गये ?

इसका आप लोग क्या उत्तर देते हैं ?

(श्रावकगण—' खमा ! ')

खमा क्या ? मैं आपसे इसका उत्तर मांगता हूं और आप लोग ' खमा ' कर देते है ।

खैर, आप उत्तर नहीं दे सके । मैं बतलाता हूं उसे याद रखिये । गजसुकुमालजी इस लिये जले कि उनकी न जलने की भावना ही नहीं थी । वे तो शीघ्र मोक्ष में जाने की भावना रखते थे । यदि वे न जलने की किंचित मात्र भी भावना मन में लाते तो अग्नि की ताकत नहीं थी कि उनको जला सकती । उन के मन में तो उस समय यही भावना काम कर रही थी कि ससुरजी ने मेरा काम बना दिया । जिस समय सीताजी ने अग्नि में प्रवेश किया उस समय उनकी आत्मा इस से उलटा काम कर रही थी । वे चाहती थी कि मुझे अग्नि न जलावे इस से अग्नि शीतल जल के समान हो गई और इनका एक रू भी न जला ।

मित्रों ! क्या आप ऐसी शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं ? यदि चाहते हैं तो तैयार हो जाइये ।

फारसी में एक कहावत है जिसका साराश यह है.

' मर्दानगी और नामर्दी में सिर्फ एक कदम का फर्क है । '

मित्रों ! यही बात आप मोक्ष के लिये भी समझिये । आप अपना इधर का मुह उधर फेर दीजिये अर्थात् आप अपना मुंह दुनिया की तरफ से मोड़ कर मोक्ष की तरफ कर दीजिये, मोक्ष आपके नजदीक हो जायगा । जब तक आपका मुह इधर है तभी

तक मोक्ष आपसे दूर है। दृष्टान्त लीजिये—बम्बई का मुसाफिर बीकानेर आने के लिये और बीकानेर का मुसाफिर बम्बई जाने के लिये रेल में सवार हुआ। यद्यपि ये अपने अपने स्थान के पास है तो भी रेल चली तभी से बम्बई वाले के लिये बीकानेर और बीकानेर वाले के लिये बम्बई नजदीक होगया। इसका कारण क्या। यही कि इनकी क्रियाओं में फेर हो गया।

मनुष्य गृहस्थाश्रम में दीर्घकाल तक रहे पर जिसने मोक्ष की तरफ मुंह फर लिया है उसके लिये मोक्ष नजदीक है। जो दिखनेमें मोक्ष का पथिक मालूम पड़ता हो और कठिन क्रिया उसके लिये करता हो पर मन उस तरफ न लगा हुआ हो तो समझना चाहिये कि वह मोक्ष से उलटा जा रहा है।

* * * * *

गोशालक ने सकडाल के पूछने पर 'महामहाण' 'महागोप' 'महासार्थवाह' की व्याख्या की, और ये सब गुण महावीर में बतलाये फिर भी अपनी इच्छा सफल होते न देख, बोला—

आगमण देवाणुप्पिया! इह महाधम्मकही? देवताओं के प्रिय! क्या यहां महाधम्मकथी आये थे?

धर्म के उपदेश देने वाले को 'धर्म कथी' कहते हैं। उन उपदेशकों में सब से बड़ा धर्मोपदेशक उसे 'महाधम्म कथी' कहते हैं।

सकडाल-केण देवाणुप्पिया! महाधम्म कही? आप महाधम्मकथी किसे कहते हैं?

गोशालक-समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही। मैं श्रमण भगवान् महावीर को कहता हूं?

सकडाल—से केणट्ठेणं समणे भगव महावीरे महाधम्म कही!
किंप्रकार ?

गोशालक—एव खलु देवाणुप्पिया! समणे भगव महावीरे महइ महालयंसि संसारंसि वहवे जीवे नस्समाणे विनस्स माणे ख० छि० भि० लु० वि० उम्मग्गपडिवन्ने सप्पहविप्पणट्ठे मिच्छत्त बलाभि भूए अट्ठविह कम्म तम पडल पडोच्छन्ने बहूहिं अट्ठेहि य जाव वागरणेहि य चाउरन्ताओ संसार कन्ताराओ साहत्थिं नित्थारेइ, से तेणट्ठेण देवाणुप्पिया! एव वुच्चइ—समणे भगव महावीरे महाधम्म कही।

संसार रूपी महा समुद्र में जो जीव नष्ट हो रहे हों याने उलटे पथ पर चलते हों या नाना प्रकार के जीवों से दुखी हो रहे हों, उनसे रक्षा करने वाले सत्पथ पर लगाने वाले वे प्रभु महावीर हैं और वेही 'महाधम्मकही हैं।'

मित्रों! पृथ्वी मार्ग जलमार्ग से सहजहै। पृथ्वी पर किसी प्रकार भूलता भटकता भी मनुष्य अपने स्थान पर जा पहुचता है पर जल मार्ग को तै करना बडा कठिन है। इसका अनुमान उसी को हो सकता है जिस को जल मार्ग से यात्रा करने का कभी अवसर प्राप्त हुआ हो। पृथ्वी के प्राणी को जल का डर बहुत लगता है। कोई कहे कि हम तुम्हें सब प्रकार की रिद्धियें देंगे, बाद में डुबा देंगे, क्या इसे कोई मजूर करेगा ?

'नहीं'।

पर डूबते हुए को यह कहा जाय कि हम तुम्हें निकालते हैं, तुम्हारा सर्वस्व हमें देना होगा, तो ?

'मजूर कर लेगा'

क्यों ? इस लिये कि मनुष्य को अपने प्राण बहुत प्यारे हैं। बचपन में मुझे अनुभव हुआ था कि एकबार हमारे गाव से ४कोस की दूरी पर भोजन था। बहुत से स्त्री पुरुषों को वहा का निमत्रण था। मेरे सासारिक मामाजी भी सामिल थे। रास्ते में नदी भरपूर आई हुई थी। स्त्री पुरुषों की हिम्मत नहीं थी कि उसे पार कर लें। इस लिये कुछ मनुष्य इनकी सहायता के लिये तैनात किये गये। जब एक आदमी मुझे अपने कधे पर बैठा कर पार ले जाने लगा तब थोड़ी दूर तो कुछ नहीं, बीच आने पर बड़ा डर लगने लगा। उस समय वह मनुष्य मुझे इतना प्यारा लगा कि माता पिता आदि भी याद न आये। उस आदमी ने पहले कुछ पैसे तो ठहरा ही लिये थे इस पर भी मैं कहता-'मैं तुझे इस से ज्यादा दूगा, देखना गिराना मत' मेरे गिरने का मौका आया ही नहीं था फिर भी वह मुझे प्यारा लगता था, जब मनुष्य के डूबने का वक्त आता होगा तब उसे कैसा लगता होगा, इसका अनुमान आप लोग कर सकते हैं।

मित्रों ! जल में डूबने का हमें इतना भय रहता है पर हम न चेतेंगे तो हमारे अनन्त भव डूब जायेंगे क्या हमें इसकी चिंता न करनी चाहिये ? दूसरी बातों में रस पैदा हो और जन्म मरण कटने की धर्म कथा सुनते समय निद्रा आती हो-आलस्य आता हो तो अपना कम नसीब समझना चाहिये।

धर्म कथा ऐसी वैसी बात नहीं है। यह ससार सागर से तिरानेवाली नौका है। धर्मकथा सुनने के लिये बैठकर बातें करना, इधर उधर की हाकना, नौका को टल्ला देना जैसा है। बहनों को यह बात विशेष ध्यान में रखनी चाहिये। जिस समय धर्म कथा

चलती हो उस समय ' हा-हू ' मचाकर, न स्वयं सुनना और न दूसरों को सुनने देना यह महा पाप है।

* * * * *

' महाधम्मकही ' की व्याख्या सुनकर भी सकडाल कुछ न बोला तब गोशालक फिर पुछता है—

आगए ण देवाणुप्पिया ! इहं महा निज्जामए ?

' यहा महा निर्यामिक आये थे ? '

सकडाल—' केण देवाणुप्पिया ! महानिज्जामए ? '

' आप महा निर्यामिक किसे कहते हैं ? '

गोशालक—' समणे भगव महावीरे महानिज्जामए। '

'भगवान् महावीर प्रभुको।'

सकडाल—' से केणट्ठेण०। '

किस प्रकार ?

गोशालक—' एव खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगव महावीरे ससार महासमुद्दे बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे जाव विलु० वुड्डमाणे निवुड्डमाणे उप्पियमाणे धम्ममईए नावाए निव्वाणतीराभिमुहे साहत्थि सम्पावेइ, से तेणट्ठेण देवाणुप्पिया ! एवं वुचइ-समणे भगव महावीरे महानिज्जामए। '

ससार समुद्र में बहुत से जीव है उन्हें पार लगाना एक चतुर कप्तान का काम है। समुद्र के अन्दर पहाड़ की टकर खाने से जहाज खतरे में आजाता है। चतुर कप्तान उसको बचा लेता है तो लोग उसकी बहुत तारीफ करते है पर जिसका जहाज टकराता नहीं सीधा स्थान पर पहुच जाता है लोग उस कप्तान की तारीफ नहीं करते। पर वास्तव में सोचा जाय तो विशेष धन्यवाद का पात्र यही है। क्योंकि इसने अपनी बुद्धि से

उसे टकराने नहीं दिया। ससारिक समुद्र से पार उतरना कोई मुश्किल नहीं, मुश्किल तो ससार समुद्र को पार करने में है। इस समुद्र से पार उतारने वाला महावीर प्रभु है इसीलिये इन्हें महानाविक की उपाधि दी गई है।

सकडाल ने महामहाण, महागोप, महासार्थवाही, महा धम्मकही, महा निर्यामिक की व्याख्या गोशालक के मुह से सुनी और यह निश्चय करलिया कि ये उपाधियें महावीर प्रभु के लिये ही कही हैं तब गोशालक से बोला—

आप बडे विचक्षण हैं, बुद्धिमान हैं, पडितों में भी पडित गिने जाते है, कुशल हैं, जिस बात का आप अच्छी मानते है उसे सिद्ध करने में कभी देरी नहीं लगाते, अपूर्व बात के तत्व को भी आप तत्काल ग्रहण कर लेते है, महावीर प्रभु के गुणों से आप सब प्रकार अभिज्ञ हैं
फिरभी आपके और उनके बीच भेद क्यों हैं ? यदि आपको कोई बात ठीक न जचती हो तो आप मेरे धर्म गुरु (महावीर) से वाद विवाद कर सत्य का निर्णय क्यों नहीं कर लेते ?

गोशालक—'मैं भगवान् से वाद विवाद नहीं कर सकता।

मित्रों ! गोशालक ऊपर से प्रभुके गुणगान करता था पर हृदय से नहीं। यदि हम भी ऊपर से स्तुति आदि करें और हृदय में प्रेम जागृत न करें तो हम भी गोशालक के बराबर ही होंगे।

सकडाल-(गोशालकसे) आप श्रमण भगवान् महावीरजी से वाद विवाद क्यों नहीं करते ?

गोशालक—मैं समर्थ नहीं हु।

सकडाल-क्यों, क्या कारण ?

गोशालक-

सद्दालपुत्ता ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जुगवं जाव निउणसिप्पोवगए एगं महं अयं वा एलयं वा सूयरं वा कुक्कुडं वा तित्तिरं वा वट्टयं वा लावयं वा कवोयं वा कविञ्जलं वा वायसं वा सेयणं वा हत्थंसि वा पायंसि वा खुरंसि वा पुच्छंसि वा पिच्छंसि वा सिङ्गंसि वा विसाणंसि वा रोमंसि वा जहिं जहिं गिण्हइ तहिं तहिं निच्चलं निप्फंदं धरेइ, एवामेव समणे भगवं महावीरे ममं बहूहिं अट्ठेहि य हेऊहि य जाव वागरणेहि य जहिं जहिं गिण्हइ तहिं तहिं निप्पट्ठपसिणवागरणं करेइ, से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता ! एवं वुच्चइ-नो खलु पभू अहं तव धम्मायरिएणं जाव महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ।

प्रिय सकडाल ! एक ऐसा पुरुप जिसकी जवानी उमड़ रही हो, काल ने जिसके ऊपर दुष्ट हलमा न किया हो, जो बलशाली हो, सामर्थ्यवान् हो, जिसके हाथ पैर दृढ, हड्डियें मजबुत, दोनों पार्श्वभाग व पीठ सुदृढ, जिसकी दोनों भुजाए बलशाली, कधे मासल, इसके सिवाय जिसने नाना प्रकार के व्यायामों से शरीर को परिपुष्ट कर दिया हो, जो लाँघने में, कूदने में, फुदकने में, दौडने में तेज हो, चपल हो, जो निश्चित कार्य को शीघ्रता से कर डालता हो, जो बुद्धिमान और मेधावी हो, ऐसे पुरुप के हाथ से बकरी, भेड, मुर्गा, सूअर तीतर, बतक, लावा, कबूतर, बंदर, कौआ, बाज, आदि छूट कर नहीं जीत सकते उसी प्रकार महावीर प्रभु से मैं वाद विवाद में जीत नहीं सकता ।

मित्रों ! शरीर की दो स्थिति होती है । एक तो जन्म से ही मजबूत हो और दूसरा व्यायामादि से किया हुआ हो ।

मनुष्य अपने को बलवान व निर्बल दोनों बना सकता है। कई मनुष्य तो ऐसे होते हैं जो जन्म से बिलकुल निर्बल होते हैं पर व्यायाम आदि से अपना शरीर मजबूत कर लेते है। कई ऐसे होते हैं जो अपने माता पिता के ब्रह्मचर्य के प्रताप से शरीर अच्छा प्राप्त करते हैं पर पीछे से अपना शरीर बिगाड़ देते है। शरीर अच्छा मिलने मे ही कुछ नहीं होता, पीछे उस का सस्कार होता रहे तो तेजी बनी रहती है।

आप देखते हैं, रुई कई प्रकार की होती है, अच्छी रुई का अच्छा कपडा बनता है। यदि कोई अच्छी रुई को ठीक ढग से न पींजे और महीन सूत निकाले यह उस रुई का दोष नहीं है, यह तो उस मनुष्य का दोष है। जन्म जात शरीर मजबूत होना यह अच्छी रुई के समान है, बाद में किसी अच्छे कलाचार्य के पास जाकर व्यायाम की शिक्षा रुई को सस्कारित करने के समान है।

आजकल आप लोगों का ध्यान पुरुषार्थ की तरफ नहीं-सा मालूम पडता है। आप लोग आज हरेक बात में 'राम करे सा सही' या 'होणो सो होवेला' कहा करते हैं, यह बडे आश्चर्य की बात है। जिस बच्चे को ८ वर्ष की ऊमर में व्यायामादि की शिक्षा देकर उसका शरीर मजबूत बनाना चाहिये था उसी ऊमर में आप लोग उसके विवाह आदि की चर्चा कर उसके दिमाग में जहर भर देते हैं। आप लोग यही समझते हैं कि 'बच्चे का ब्याह किया और हमारा कर्तव्य पूरा हुआ।'

भाइयों! माता पिता कहानेवालों का सिर्फ इतना ही कर्तव्य नहीं है। यह कर्तव्य तो तब करना होता है जब बालक सुशि-

ष्ठित और बलवान बन जाय। आज कल की शिक्षा को हम सुशिक्षा नहीं कह सकते। यह शिक्षा स्वावलम्बिनी नहीं है, पर मुखापेक्षी है। स्कूलों कॉलेजों की पढ़ाई कर फिर नौकरी के लिये इधर उधर चक्कर काटना इसे कौन बुद्धिमान् स्वावलम्बिनी शिक्षा कहेगा? जिस शिक्षित कहलाने वाले को १०-५ मनुष्यों का पालन करना चाहिये या वह स्वयं १० मनुष्यों से पालित होता है। उसके लिये कपड़ा पहनाने वाला, बूट कसने वाला, स्नान कराने वाला, टट्टी जाते समय लोटा लेजाने वाला आदि कई मनुष्य हो तब उसका एक दिन कटे। भला, यह भी कोई शिक्षा हुई? इसे शिक्षा नहीं कह सकते। यह तो अमीरी सिखलानी हुई। पहले के मनुष्यों को ऐसी शिक्षा दी जाती थी कि वे किसी काम के लिये दूसरे के मुंह की तरफ नहीं देखते थे। वे अपना ही खाना अपना ही पहनना आदि में सुचतुर थे। अन्न पैदा करना, पीसना रसोई बनाना जैसी कलाओं से भी वे अनभिज्ञ नहीं थे। आज आप खा जानते हैं पर एक दिन रसोइया न आए तो मुंह पर हवाइयाँ उड़ने लगे या किसी हलवाई की दुकान टटोलनी पड़े।

राममूर्ति मेरेसे अहमद नगर में मिले थे। मैंने उनसे कहा कि आपने बल तो प्राप्त किया पर धर्म आराधन भी कुछ करना चाहिये। उन्होंने कहा-'बहुत अच्छा।' फिर बोले—मनुष्य को पहले बल की जरूरत है, बाद में धर्म की। क्योंकि बलहीन धर्म पालन नहीं कर सकता। बल के लिये ब्रह्मचर्य पालन करना जरूरी है। वे कहते थे—अभ्यास से मनुष्य बलशाली हो सकता है। यदि किसी को इसमें सन्देह हो तो वे मुझे ५ वर्ष का

निर्बल बचा दे, २० वर्ष की आयुतक अपने पास रखकर यदि दूसरा राममूर्ति न बना दू तो बात क्या ? राममूर्ति कहते थे कि मैं पहले बहुत दुर्बल और रोगी था लेकिन अभ्यास से मैं इस स्थिति को पहुचा हू । मेरी खुराक निरामिष है । मैं किसी व्यसन का सेवन नहीं करता ।

मित्रों ! क्या आप भी अपने बच्चों को बलवान बनाने का प्रयत्न करते हैं ? दिखाई तो नहीं पड़ता । आप उन कोमल बच्चों के ऊपर लग्न सस्कार जैसा भारी जोखम का काम डालकर सचमुच महा अन्याय करते हैं । जो समाज पुनर्लग्न को नहीं चाहता उसे इस तरफ विशेष ध्यान देना चाहिये ।

अणुयोग द्वार में पाठ आया है उसमें कहा गया है कि दुपद चौपद और अपद सस्कार करने से सुधरते है और ला परवाही करने से बिगड़ जाते है । मनुष्यों की गिनती दुपदों में है य किस प्रकार सुधरते हैं इसका उदाहरण राममूर्ति है । भारत की गौओं का अमेरिकन लोग सस्कार करते हैं इससे वे यहा से बहुत ज्यादा दूध देने लग जाती है, यह चौपदों का उदाहरण है । इसी प्रकार वैज्ञानीकों ने कई पेड़ों के सस्कार कर काटों वालों को बिना काटे वाले और छोटे फल वालों को बड़े फल वाले बनाये इससे अपदों का उदाहरण समझ लीजिये । क्या इन उदाहरणों को देख कर भी आप 'कर्मों की गति' पर ही विश्वास रखेंगे ?

आप गोशालक को बुरा मानते हैं पर उसके सिद्धान्त को मानते हैं क्या यह वास्तव में गोशालक को मानना न हुआ ? मित्रों ! आप महावीर के शिष्य कहलाते हैं पर काम करते हैं गोशालक के, बतलाइये फिर आप महावीर के शिष्य किस प्रकार

हुए ? महावीर के सच्चे शिष्य आप तभी कहलायेंगे जब आप उनके सिद्धान्त के अनुसार काम करने लग जायेंगे।

सकडाल महावीर का सच्चा शिष्य था इसीलिये आज गोशालक से कहता है कि आप मेरे गुरु से शास्त्रार्थ कर लीजिये। शास्त्रार्थ करने पर सत्य सिद्धान्त का निश्चय हो जायगा।

गोशालक कहता है कि मै महावीर प्रभु से शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हू। उनसे शास्त्रार्थ करने के लिये साहस करना बकरी का सिंह से सामना करना है।

मित्रों! आप लोग कहेंगे---'आज गोशालक के शिष्य मौजूद नहीं और महावीर के शिष्य मौजूद है इसलिये आप उसे बकरी बना रहे है।' नहीं मित्रों! बात ऐसी नहीं है। महावीर का सिद्धान्त 'स्याद्वाद' है। यह ऐसा सिद्धान्त है कि इसकी भित्ति तोडना अ-सभव है। जहा लोगों ने किसी वस्तु को एकान्त कहा, वहा महावीर ने अनेकान्त कहा। एकान्त से वस्तु स्थिति ठीक नहीं रहती, अनेकान्त से वह पूर्ण होती है। आप किसी मनुष्य से पूछे कि-तुम पिता हो या पुत्र? यदि वह कहे कि 'पिता हू' वो उसका यह कहना एकान्त रूप से झूठ है। कारण, अपने पिता की अपेक्षा वह पुत्र भी तो है। कहने का मतलब यह है कि एक वस्तु में एक ही बात एकान्त स्वीकार करना यह गलत है।

बैठे हुए भाइयों में बहुत से इस सिद्धान्त के अनुयायी हैं पर बहुतों को शायद ही मालूम होगा कि 'अनेकान्त' किसे कहते हैं। खैर, इस पर फिर कभी विस्तृत विचार किया जायगा।

* * * * *

गोशालक ने महावीर प्रभु से शास्त्रार्थ करना अ-स्वीकार कर लिया तब सकडाल कहता है---

जम्हाणं देवाणुप्पिया ! तुब्भे मम धम्मायरियस्स जाव महावीरस्स सन्तेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं भावेहिं गुणकित्तणं करेह तम्हा णं अहं तुब्भे पाडिहारिएणं पीढ जाव संथारएणं उवनिमन्तेमि, नो चेव णं धम्मोत्ति वा तवोत्ति वा, तं गच्छह णं तुब्भे मम कुम्भारावणेसु पाडिहारियं पीढफलग जाव ओगिण्हित्ताणं विहरह।

हे देवाणुप्रिय ! तुमने मेरे धर्माचार्य श्रीमहावीर भगवान प्रभु का गुणानुवाद उचित ही किया है। वे ऐसे ही हैं। तुम्हारी इस स्तुति से प्रसन्न होकर मैं तुमको आमंत्रण करता हू कि तुम मेरी कुम्भकार शाला में जाकर सुख से निवास करो और वहा के पीठ फलक पाट पाटला आदि को काम में लाओ।

गोशालक की कामना सिद्ध हुई। वह सकडाल की कुम्भकार शाला में विचरने लगा। अब उसे यह आशा बंध गई होगी कि सकडाल की कुम्भकार शाला में मैं रहता हू, वह कभी कभी मेरे पास आता जाता रहेगा, मैं उस पर फिर से अपना प्रभाव जमा दूगा, लोग मेरे यहा ठहरने से समझ जायेंगे कि सकडाल गोशालक का ही शिष्य है।

तए णं से गोसाले मखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं जाहे नो सचाएइ बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य निग्गन्थाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा सन्ते तन्ते परितन्ते पोलासपुराओ नगराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता बहिया जणवय विहार विहरइ।

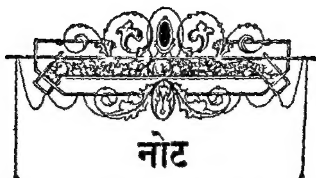
गोशालक ने सकडाल के भावों के परिवर्तन करने के लिये बहुत कोशीशें कीं, कई प्रकार के तर्क वितर्क किये, उपदेश दिये, उदाहरण दिये, पर सकडाल अपने सिद्धान्त से बिलकुल भी विचलित नहीं हुआ। गोशालक समझ गया कि मैं मन से, वचन से, कर्मसे सब प्रकार से कोशिष कर चुका पर सफल न हुआ।

गोशालक ने वहा से विहार कर दिया।

* * * *

सकडाल पुत्र श्रावक आजकी तरह श्रद्धा लेकर नामधारी श्रावक ही न रहा किन्तु महावीर के तत्वों का एवं सिद्धान्तों का जाणकार हुवा। वह महावीर के सिद्धान्त प्रवचनों का ऐसा पारङ्गत हुवा कि देवता भी जिनको प्रवचन से चलाने के लिये आया, अनेक उपसर्ग दिये पर सत्य सिद्धान्त से विचलित नहीं करसका.

सुखपूर्वक श्रावकव्रति पालन करते हुवे चौदह वर्ष व्यतित हुवे तब आपने कल्याण की तरफ विशेष लक्ष देते हुवे सासारिक कार्य्यों से निवृत होकर साडे पांच वर्षतक श्रावक की ११ पडिमा वहन कर के आलोयणा निंदणा कर आत्मा को विशुद्ध बनाय एक माह का सथारा करके काल के समय काल कर सुधर्म देवलोक के अरुणोचय विमाण में उत्पन्न हुवे वहा से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर केवली प्ररुपित धर्म से प्रतिबोध पाकर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त कर यावत् सिद्धि पद को प्राप्त करेंगे सेवभंते ?



नोट

उक्त कथा का पिछला भाग चातुर्मास के व्याख्यान संग्रह में न आने से जिस खूबी और जिस रोचकता के साथ विवेचन आना चाहिये न देसके। यही वर्णन यदि श्रीमान् आचार्य्य महाराज साहब के श्रीमुख से फरमाया हुवा व्याख्यान हमारे संग्रह में आता तो वाचक को अधिक बोध मद और असर कारक होता किन्तु ऐसा नहोने से पिछला भाग हमें पूर्ण करना पडा है

सम्पादक

